बच्चों के रोग और उनका इलाज

लेखक
कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय

महेन्द्र रसायनशाला
कटरा
इलाहाबाद

प्रकाशक

महेन्द्र रसायनशाला

कटरा

इलाहाबाद

प्रयम संस्करण १९४८

मूल्य २)

मुद्रक

डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

जीवन सखा प्रेस

लकर गंज, इलाहाबाद

दो शब्द

बच्चे किसी राष्ट्र के आधार-स्तम्भ होते हैं। जो आज बच्चे हैं कल उन्हींके कन्धे पर राष्ट्र संभालने की जिम्मेदारियाँ आती हैं। किसी राष्ट्र का उत्थान उसकी सन्तानों पर निर्भर करता है। अतः बच्चों के पालन-पोषण और उनकी स्वास्थ्य-रक्षा की जिम्मेदारी बहुत बड़ी चीज समझी जाती है। समुचित रीति से उनका पालन-पोषण करना जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक आवश्यक है उनके अस्वस्थ होने पर उनकी संभाल करना, उनकी परिचर्या और चिकित्सा करना। हमारे देश के माता-पिता इस दिशा में बहुत अनभिज्ञ हैं। एक तो यहाँ अभी समुचित रूप से शिक्षा का प्रचार नहीं है दूसरे उस कला या विद्या के प्रचार का साधन भी नहीं है। इस विषय पर हिन्दी में अच्छी पुस्तकों का नितान्त अभाव है। दूसरी बात है गलत ढंग के इलाज की। शहरों के बच्चों की चिकित्सा अधिकांशतः एलोपैथी पद्धति से होती है। एलोपैथी पद्धति से रोग प्रायः दबाये जाते हैं, लक्षण दबाये जाते हैं, शरीर से दोष और विकार बाहर नहीं निकाले जाते। दूसरे एलोपैथी की औषधियाँ प्रायः विषैली होती हैं इस प्रकार बचपन से ही बच्चों का शरीर दोष-पूर्ण—विकार से भरा—बनाया जाता है और बच्चों को अस्वस्थ, कमजोर, जीवनी शक्ति से हीन बनाया जाता है। आगे चलकर इनमें अनेक भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। सन्तान कमजोर होती है और मृत्यु संख्या भी अधिक होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बच्चों के रोग दूर करने का सरल मार्ग बताया गया है। इस विधि से रोग दबाया नहीं जाता बल्कि जीवनी-शक्ति बढ़ती है और सब विकार शरीर से बाहर निकल जाते हैं और रोग की जड़ कट जाती है और रोग निवारक-शक्ति सबल होती है। इसको आयुर्वेदीय की भाषा में पथ्य-पालन कहते हैं। यही चिकित्सा का मूलमंत्र है। इस पुस्तक में कुछ आयुर्वेदीय

औषधियां भी दी गई हैं जो सम्पूर्ण रूप से निर्दोष और लाभदायक हैं। यत्र-तत्र एलोपैथी चिकित्सा का भी संकेत है जिसमें विषय का ज्ञान समुचित रूप से हो सके। बच्चों की जीवन-रक्षा में यह पुस्तक बड़ी लाभदायक सिद्ध होगी ऐसा हमारा विश्वास है।

कागज और प्रेस की कठिनाइयों के कारण इस पुस्तक के प्रकाशित होने में काफी अधिक विलम्ब हो गया। पाठकों का तकाजा बार-बार होता रहा, उनसे अनेक वादे किये गये फिर भी देर हो ही गई। आशा है पाठकगण विलम्ब के लिए हमें दोषी नहीं समझेंगे। प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में पहली ही है हमें आशा है इस पुस्तक का भी आदर जनता में उसी प्रकार होगा जिस प्रकार हमारी अन्य पुस्तकों का हुआ है।

जो लोग इस पुस्तक की सहायता से चिकित्सा करना चाहें उन्हें पुस्तक कई बार आदि से अन्त तक अच्छी तरह पढ़ लेना चाहिए जब विषय अच्छी तरह समझ में आ जाय तब इलाज करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर अच्छे चिकित्सक से परामर्श लेना अच्छा है। क्योंकि कोई भी पुस्तक अच्छे चिकित्सक का स्थान नहीं प्राप्त कर सकती।

यह पुस्तक यों तो पूर्ण रूप से स्वतंत्र है और विषय भी सम्पूर्ण सा है। परन्तु यह पुस्तक "अचूक चिकित्सा विधान" का बाल-चिकित्सा खण्ड है। और बाल-चिकित्सा का समावेश उसमें नहीं किया जायगा।

महेन्द्रनाथ पाण्डेय

महेन्द्र रसायनशाला, इलाहाबाद
३१-१२-४८

विषय-सूची

बच्चों के रोग और उनका इलाज

अध्याय १

विषय-प्रवेश

आधुनिक सभ्य संसार अपने देश के बच्चों और नवयुवकों को स्वस्थ और सबल बनाने में अत्यधिक संलग्न है। यह स्वाभाविक ही है। स्वतन्त्र होने के बाद हमारे देश में भी स्वास्थ्य-चर्चा हो रही है परन्तु अभी तक कोई उल्लेखनीय ठोस कार्य नहीं हो सका है। राष्ट्रोत्थान में बच्चों का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। वे ही हमारे भविष्य के महल की नींव हैं। यदि नींव कमजोर हो तो उस पर टिकाऊ महल नहीं खड़ा हो सकता। उसी प्रकार सन्तान के निर्बल होने पर अन्य सब बातों में समृद्ध होने पर भी कोई राष्ट्र न तो सबल हो सकता है और न उन्नत ही। अतः शक्तिशाली नींव का निर्माण करना ही बुद्धिमानी है। बच्चों को सबल, सशक्त, दीर्घजीवी, एवं निरोग, बनाना सर्व प्रथम आवश्यक है।

इस दिशा में सब से अधिक जिम्मेदारी माता-पिता की होती है। पिता से भी अधिक माता की। छोटे बच्चे तो बिलकुल ही निरोग रह सकते हैं यदि माता सावधानी से पालन-पोषण करे। रोग ईश्वर की देन नहीं है, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के तोड़ने का निश्चित परिणाम है। बच्चों की तीन अवस्थाएं होती हैं, एक केवल दूध पीकर रहनेवाले यह अवस्था ६ मास तक की होती है। दूसरे दूध पीनेवाले और थोड़ा बहुत अन्न खानेवाले यह अवस्था २-३ साल तक रहती है उसके बाद केवल अन्न खानेवाले बच्चे होते हैं। उनको जो दूध दिया जाता है वह लाभ अवश्य करता है परन्तु उनके जीवन धारण

का मुख्य साधन नहीं होता। यों तो १४-१५ वर्ष की अवस्था तक—कुमारावस्था तक—के बालक बच्चे ही माने जाते हैं और उस अवस्था तक उनकी पूर्ण रूप से देख-रेख की आवश्यकता होती है इस अवस्था तक रिकेट, स्कर्वी, रियुमेटिक फीवर, स्नायविक दौर्बल्य सम्बन्धी रोग होते हैं और उनका सम्बन्ध बचपन से ही होता है तथा उनकी चिकित्सा भी बच्चों के समान ही करनी पड़ती है। यदि औषधि देने की व्यवस्था की जाती है तो उसकी मात्रा भी युवकों से कम रखी जाती है।

वस्तुतः रोग क्या है और निरोगता क्या है यदि यह बात समझ ली जाय तथा इनका मुख्य कारण क्या है यह बात यदि ठीक-ठीक समझ में आ जाय तो सारा मसला आसानी से समझ में आ सकता है। आयुर्वेद ने रोग की परिभाषा एक शब्द में यह बताई है कि दोषों का कुपित होना रोग है। और दोषों का सम होना स्वास्थ्य है। अनेक प्रकार का अहित सेवन करने से दोष कुपित होते हैं। इस एक मात्र सिद्धान्त को आज तक एलोपैथी चिकित्सा ने स्वीकार नहीं किया। रोगों का कारण ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अनेक प्रकार के कीटाणुओं का आविष्कार किया गया और मनुष्य को उसकी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया गया। सारी बुराइयों की जड़ इसी गलत सिद्धान्त पर निर्भर ह गई। आजकल का अधिकांश शिक्षित समुदाय इसी भ्रान्त धारणा को अपनाये हुए दुख शोक और चिन्ता मग्न हो रहा है और सारी जिम्मेदारियाँ रोगाणुओं के मत्थे मढ़कर अपनी कुछ भी जिम्मेदारी नहीं महसूस कर रहा है।

रोग के कारणों को जरा विस्तार से समझने की आवश्यकता है। हम जो कुछ खाते हैं उसका सार अंश रक्त बन जाता है और शेष फुजला मल बनकर बाहर निकल जाता है। यदि वह मल अन्दर रुक जाय तो सड़ता है और विषैला अंश शरीर में छोड़ता है। दूसरे हमारे शरीर में हर समय दहन क्रिया होती है और इस क्रिया में

कार्बन डाइ आक्साइड बनता है। इस विष को भी शरीर से निकालने का प्रबन्ध है। सांस के द्वारा हम आक्सीजन ग्रहण करते हैं और जब बाहर सांस फेंकते हैं तब कार्बन डाइ आक्साइड बाहर निकालते हैं और पसीना तथा मल द्वारा भी बहुत सा विष बाहर निकलता है। पेशाब द्वारा भी यूरिक एसिड नामक विष शरीर से बाहर होता है इसको वहिष्करण प्रणाली कहते हैं।

हमारा रक्त हमारे भोजन पर अवलम्बित है। यदि हमारा भोजन सबल हो तो उससे बननेवाला रक्त भी सबल होगा और यदि भोजन निर्बल हो तो उससे बननेवाला रक्त भी निर्बल बनेगा। सबल रक्त वह कहलाता है जिसमें ८० प्रतिशत क्षार की मात्रा हो और २० प्रतिशत अम्ल की मात्रा हो। निर्बल रक्त वह कहलाता है जिसमें २० प्रतिशत से अधिक अम्लता हो और ८० प्रतिशत से कम क्षारता हो। यह क्षारता जितनी ही कम होती जायगी और अम्लता जितनी बढ़ती जायगी उतना ही रक्त अधिक निर्बल होता जायगा। उतना अधिक शरीर में रोग होंगे, शरीर की रोग-निवारक-शक्ति घटेगी।

संक्षेप में रोग के कारण ये हैं—(१) ऐसा भोजन जिसमें २० प्रतिशत से अधिक अम्लता बढ़ानेवाले पदार्थ हों और अस्सी फी सदी से कम क्षार बढ़ानेवाले पदार्थ हों, (२) शरीर की वहिष्करण प्रणाली ठीक न हो और शरीर में विषैला अंश जमा होता जाय। ये ही दो मुख्य कारण हैं जो शरीर में रोग पैदा करते हैं।

इसीको आयुर्वेद में दोषों का बिगड़ना कहते हैं। वहिष्करण प्रणाली के बिगड़ने से शरीर की सारी प्रणाली दूषित हो जाती है। शरीर के भीतरी यंत्र निर्बल, कमजोर और दूषित बन जाते हैं और शारीरिक क्रिया में रुकावट पड़ती है अथवा सर्वथा बन्द सी हो जाती है।

हमारे देश में बच्चों का भोजन बहुत ही अव्यवस्थित है। माताएं अशिक्षित और लापरवाह हैं। बच्चों के समुचित भोजन की ओर कम

ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि बच्चे कमजोर, रोगी और अस्वस्थ होते हैं। वस्तुतः बच्चे अपने जन्म से पहले से ही अर्थात माता के पेट में से ही दूषित और कमजोर भोजन पाते हैं यही कारण है कि जन्म के पहले से ही बच्चे का रक्त विकृत हो जाता है।

माता का भोजन ऐसा होना चाहिए जो माता की स्वास्थ्य-रक्षा तो करे ही बच्चे को भी सम्पूर्ण तत्व पहुँचाने में समर्थ हो। जिन बच्चों को किसी कारण माता का दूध न मिल सके उन्हें गाव या बकरी का दूध उचित पानी मिलाकर देना चाहिए। माता का दूध पीने वाले बच्चे को भी संतरे का रस ऊपर से अवश्य देना चाहिए और प्रत्येक चार घंटे पर दूध देना चाहिए। और दस बजे रात से ४ बजे सुबह तक बच्चे को दूध न पिलाया जाय। मा का दूध पिलाना हो तब भी माता का स्तन धोकर पिलाना चाहिए। जो बच्चे गाय या बकरी के दूध पर पाले जायं उनको भी सन्तरे का रस प्रति दिन अवश्य दिया जाय जिसमें उचित खनिज लवण और विटामिन प्राप्त होते रहें। हमारी राय में २ मास की अवस्था के बाद सन्तरे का रस अवश्य दिया जाना चाहिए।

एलोपैथ चिकित्स भोजन देने में बड़ी गलती करते हैं। वे विलायती बने दूध जो डिब्बे में बन्द होकर आते हैं तथा अन्य बच्चों को दिये जानेवाले भोजनों की शिफारिश करते हैं। और अन्य दूसरे प्रकार के भोजन देने की व्यवस्था करते हैं। इसका फल यह होता है कि बच्चों को खनिज लवण और विटामिनों की प्राप्ति नहीं होती और स्टार्च, चीनी, प्रोटीन आदि बहुत अधिक मात्रा में मिलते हैं। इस गलत भोजन का परिणाम यह होता है कि बच्चा देखने में मोटा ताजा होते हुए भी रोग सहन की शक्ति से सर्वथा रहित होता है। दाँत के निकलते समय के रोग, रिकेट, स्कर्वी, कोरिया, मंजिल्स आदि अनेक भयानक रोगों से ग्रसित हो जाता है।

अब एलोपैथ चिकित्सक भी मानने लगे हैं कि रिकेट या अस्थि-

दौर्बल्य उन्हीं बच्चों को होता है जिनके भोजन में कैलशियम की कमी होती है। कैलशियम एक खनिज पदार्थ ही तो है जिसकी पूर्ति भोजन द्वारा हो जानी चाहिए। लेकिन अभी तक वे यह नहीं समझ पाये हैं कि रिकेट ही क्यों सभी रोग ही खनिज लवणों और विटामिनों की कमी से होते हैं और इसके लिए एक मात्र उपाय यही है कि ऐसे भोजन की व्यवस्था की जाय जो प्राकृतिक हो, जिसमें खनिज लवण और विटामिन सभी मौजूद हों, बासी न हो, ताजा हो और समय पर ही भोजन दिया जाय।

हमारी राय में सभी रोग चाहे उनका नाम कुछ भी रखा जाय भोजन में मैदा, चीनी, चावल, धुली दाल, मांस, जलेबी, मिठाई, गुड़, चटनी, अचार, मुरब्बे, बिसकुट, घी, मक्खन, वसा आदि के अत्यधिक व्यवहार के कारण होते हैं। क्योंकि इनमें खनिज लवण और विटामिनों का अभाव होता है। ये भोजन एक ओर तो बहुत ही पौष्टिक होते हैं और दूसरी ओर हद दर्जे के दरिद्र। स्टार्च घी आदि की दृष्टि से पौष्टिक और खनिज लवण और विटामिनों की दृष्टि से दरिद्र।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय भोजन नहीं है। इस विषय को हमने अपनी पुस्तक "हमारा भोजन" में विस्तार से लिखा है। बच्चों के भोजन के सम्बन्ध में हमने अपनी पुस्तक "हमारे बच्चे" में लिखा है। इन विषयों को वहीं देखना चाहिए। यहाँ तो हमने प्रसंग वश थोड़ी सी भोजन सम्बन्धी चर्चा विषय को स्पष्ट करने के अभिप्राय से की है।

जब बच्चों को बार-बार दूध या भोजन दिया जाता है चाहे वह भोजन या दूध प्राकृतिक ही क्यों न हो उससे अपच होता है। अपच के कारण ही कब्ज, दस्त, अतीसार आदि रोग होते हैं। ये रोग अधिक और अनियमित खिलाने के रोग हैं। माता को अपनी परेशानी बचाने के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नियमित समय पर ही खिलाया जाय। घर के सभी लोगों के साथ

बैठकर खाने की आदत बच्चों के लिए बहुत ही हानिकारी है। माता-पिता बच्चों को अपनी थाली में खिलाने की आदत न डालें तो बहुत कुछ उनकी कठिनाई हल हो जाय।

वस्तुतः जन्म के पहले ही जब वे गर्भ में रहते हैं तभी से उनके शरीर पर माता के भोजन का प्रभाव पड़ता है। और दूषित और अपूर्ण भोजन के कारण उनका शरीर ठीक-ठीक बढ़ता नहीं तथा अस्थियाँ दुर्बल और कमजोर हो जाती हैं और उनकी बढ़वार रुक जाती है। गर्भावस्था में और दूध पिलाने की अवस्था तक माताओं का भोजन प्रायः सदोष ही रहता है। वे अचार, चटनी, खटाई, मिर्चा, मसाला, गुड़, चीनी, मैदा, मशीन का छंटा चावल, मांस, मछली, घी और धोई दाल आदि बहुत खाती हैं। यही चीजें उन्हें पसन्द भी हैं। ये सब चीजें रक्त में अम्लता पैदा करती हैं, इनमें खनिज लवणों और विटामिनों का अभाव रहता है। इस प्रकार का भोजन एक ओर तो खनिज लवणों से रहित होता है दूसरी ओर इनमें रक्त की अम्लता बढ़ानेवाली चीजें अधिक मात्रा में रहती हैं ऐसे भोजन से बना दूध, पूर्णरूप से पौष्टिक नहीं होता, रोग उत्पन्न कर देने-वाला होता है।

माता की जानकारी

रोगी होने पर बच्चा अकसर रोता है। यदि रात को नींद न आवे तो समझना चाहिए कि किसी न किसी प्रकार बच्चा अस्वस्थ है। लेकिन रोग के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी बच्चा रो सकता है। सावधान माता को बच्चे के रोने के कारण का पता लगाना चाहिए। कभी-कभी बच्चा भूख के कारण रोता है। यदि बच्चा चाहता है कि अपनी असुविधा की ओर माँ का ध्यान आकर्षित करे तब भी रोता है। कभी-कभी एक करवट पड़े रहने में उसे कष्ट होने लगता है और करवट बदलने के लिए वह रोने लगता है। यदि बच्चा

बिस्तरे पर पेशाब कर दे तो उससे उसे कष्ट होता है और वह रोता है कि उसे वहाँ से हटा दिया जाय। कभी-कभी छोटे बच्चे अपनी माँ का प्यार पाने के लिए रोने लगते हैं। इन सब लक्षणों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और बच्चे की आवश्यकता पूरी करनी चाहिए। रोग या पीड़ा के कारण जो रुलाई बच्चा रोता है उसमें और सामान्य रुलाई में अन्तर होता है। कभी-कभी बच्चा सिसकी लेता है परन्तु रोग और दर्द के कारण जब रोता है तब उसकी रुलाई में दर्द का अनुभव होता है। वह जोर से कष्ट के साथ चिल्ला कर रोता है।

रोगी बच्चों की पहचान

जब बच्चा रोगी हो जाता है तब उसके स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। उसे बेचैनी बहुत रहती है उसमें जिद हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। भूख मर जाती है शक्ति क्षीण हो जाती है, उठना-बैठना, हंसना-खेलना धीमा पड़ जाता है। चेहरा सुस्त और मलिन हो जाता है, उसके चेहरे से चिन्ता अथवा पीड़ा का भाव प्रगट होता है। इस परिवर्तन को माता को सावधानी से जाँचना चाहिए और उचित उपाय करना चाहिए।

न बोलनेवाले बालकों के रोगों के पहचानने की तरकीबें

छोटे बच्चे अनबोलता होने के कारण अपने कष्टों को बता नहीं सकते अतः उनके रोगों को पहचानने में बड़ी कठिनाई होती है। बच्चों को यदि ज्वर हो तो सदैव ही थरमामीटर लगाकर देखना अच्छा होता है। क्योंकि बच्चों की नब्ज स्वस्थावस्था में भी तेज चलती है अतः नब्ज देखकर ज्वर निश्चय करने में गलती हो जाने की आशंका रहती है। बालक की तकलीफ की कमी और ज्यादती उसके रोने से प्रगट होती है। यदि बालक कम रोवे या धीरे-धीरे रोवे तो समझना चाहिए कि तकलीफ और पीड़ा कम है। यदि बालक बहुत रोवे

और जोर-जोर से चिल्लाकर रोवे तो समझना चाहिए कि पीड़ा अधिक है।

यदि बालक के सिर में दर्द होता है तो वह अपनी आँखें नहीं खोलता, बन्द रखता है, अपनी गर्दन को गिराये रखता है, सिर खड़ा नहीं रखता। बालक बार-बार अपना हाथ सिर पर लगाता है।

यदि बालक के किसी अंग में पीड़ा होती है तो उसे बार-बार अपने हाथ से छूता है यदि कोई दूसरा उस स्थान पर हाथ रखता है तो रोता है।

यदि स्वस्थ बालक रह-रह कर रो उठे तो उसके पेट में दर्द समझना चाहिए। यदि रात को बालक सोवे नहीं, रोता रहे तो उसके अंग प्रत्यंग की जाँच करनी चाहिए। सम्भव है कहीं कोई चींटी आदि काटती हो कोई फोड़ा वगैरह निकलता हो यदि ऐसी कोई चीज न हो तो पेट में दर्द होना सम्भव है। कान में दर्द होने पर भी बच्चा रोता है। कान छूता है। सावधानी से इसकी जाँच करनी चाहिए।

यदि पाखाना पेशाब दोनों रुक गये हों, आँतें बोलती हों, पेट में अफरा हो तो समझना चाहिए कि बच्चे के पेट में दर्द है। यदि बालक को प्यास बहुत लगे, मूर्च्छा हो, और पेशाब न होता हो तो समझना चाहिए कि उसके पेड़ू में दर्द है।

यदि बालक बोलता न हो और बार-बार मुख खोले और जीभ बाहर निकाले तो समझना चाहिए कि उसे प्यास लगी है। ज्वर की हालत में प्यास बहुत लगती है और बच्चा बार-बार मुंह खोलकर पानी माँगता है। ज्वर की दशा में सावधानी से देख भाल करनी चाहिए।

जुकाम हो जानेपर नाक बन्द हो जाने से बच्चा नाक से साँस नहीं ले पाता मुंह से साँस लेता है, स्तन पीते समय बार-बार स्तन छोड़कर साँस लेता है।

यदि बालक के हृदय में पीड़ा हो तो वह अपने होंठ चबाता है और मुट्ठियों को जोर के बाँध कर भींचता है।

बच्चो के लिए पथ्य-व्यवस्था

ज्वर होने पर बड़ों के लिए उपवास की व्यवस्था करनी पड़ती है। परन्तु छोटे बच्चों को ज्वर होने पर उपवास करने या निराहार रहने की व्यवस्था भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। यदि बच्चा केवल माँ का दूध पीता हो तो माँ को उपवास करने से दूध कम बनेगा और दूध का दोष दूर हो जायगा। इतने से ही बच्चे का उपवास का कार्य हो जायगा। टाइफाइड आदि रोग में दूध फाड़कर उसका पानी दिया जाय और सन्तरे आदि पतले रसवाले फलों का रस दिया जाना चाहिए। माता का दूध भी बच्चे को देना चाहिए किन्तु दूध पिलाने का समय बढ़ा देना चाहिए। बच्चों को निराहार रखने से वे क्षीण हो जाते हैं और उनका रोग असाध्य सा हो जाता है। ३-४ वर्ष की अवस्था के बच्चों को किशमिश मुनक्का आदि का रस और पतले रसवाले फलों का रस अथवा तरकारियों का रस दिया जा सकता है। रोग दूर होने पर चबाकर खाये जानेवाले पथ्य फल जो अच्छी तरह पके हों देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। रोटी चावल दाल आदि अन्न बन्द कर देने से रोग जल्द दूर होता है इसे न भूलना चाहिए। ज्वर आदि रोगों में प्यास लगने पर उबला हुआ जल देना चाहिए। रोगी बच्चे को चारपाई पर ही पड़े रहने देना अच्छा होता है उसे उठने, गिरने, चलने आदि से बचाना चाहिए। यदि बच्चे को औषधि देना उचित हो तो उसे शहद आदि के साथ औषधि दी जानी चाहिए। हमारी राय में जहाँ तक सम्भव हो छोटे बच्चों को औषधि न देना ही अच्छा है। आयुर्वेद की राय यह है कि जो बच्चे माता का दूध पीते हैं उनको औषधि न देकर दूध पिलानेवाली माता को ही औषधि दी जाय। इससे प्रगट होता

है कि प्राचीन चिकित्सक छोटे बच्चों को औषधि देना उचित नहीं समझते थे। सौम्य गुणवाली औषधियाँ उचित मात्रा में बच्चों को दी जा सकती हैं। परन्तु औषधि देने में अन्धाधुंध नहीं मचाना चाहिए। बच्चों की प्रकृति बड़ी कोमल होती है, स्नायुएं कोमल होती हैं, तेज औषधियों से उन्हें अधिक हानि की सम्भावना रहती है।

बच्चों के लिए औषधि की मात्रा

बच्चों की औषधि के विषय में सब से आवश्यक बात मात्रा का ज्ञान है। जितनी दवा बड़ों को दी जाती है, उतनी ही बच्चों को नहीं दी जा सकती, और न तो उतनी तेज दवा दी जा सकती है जितनी तेज बड़े बर्दाश्त करते हैं। बच्चे कोमल होते हैं, उनका स्वभाव कोमल होता है इस कारण उनके लिए औषधि की मात्रा थोड़ी होती है साथ ही प्रायः सभी तरह की दवा मिश्री, माँ का दूध, शहद या आवश्यकतानुसार ऐसी ही मीठी चीजों में दी जाती है। जैसे-जैसे बच्चे की अवस्था बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनकी औषधि की मात्रा भी बढ़ती जाती है। पहले महीने में बच्चे को आधी रत्ती काष्ठ औषधि देनी चाहिए। इसी प्रकार प्रति मास आधी-आधी रत्ती मात्रा बढ़ाता जाय। १ वर्ष के बालक को ६ रत्ती औषधि देनी चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष ६-६ रत्ती की वृद्धि करनी चाहिए। सोलह वर्ष के बाद मात्रा निश्चित हो जाती है। फिर कोई परिवर्तन नहीं होता। यह औषधि की मात्रा एक अन्दाज से शास्त्रानुकूल लिखी गई है। यह अधिक से अधिक मात्रा है। औषधि का प्रयोग देश, काल, वय, स्वास्थ्य, शक्ति आदि का विचार कर के उतना ही करना चाहिए जितना उचित है। काढ़े की मात्रा चूर्ण से चौगुनी रखी जा सकती है।

अध्याय २

ज्वर चिकित्सा

ज्वर के अनेक भेद हैं उन सब का वर्णन इस छोटी सी पुस्तक में सम्भव नहीं है। वे रोग बड़ों को भी होते हैं और बच्चों को भी, यह पुस्तक केवल बच्चों के रोग के विषय में है अतः बहुत थोड़े से ज्वरों का संग्रह इस अध्याय में किया गया है। निमोनिया ज्वर या श्वसनक ज्वर का वर्णन हमने इस पुस्तक में अन्यत्र किया है क्योंकि ज्वर होते हुए भी उस रोग का सम्बन्ध फेफड़े और श्वास नलिका से है क्योंकि उन अंगों में प्रदाह होने के कारण ज्वर होता है। प्रधान कारण उन अंगों का प्रदाह है ज्वर नहीं। ज्वर के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखनेवालों को हमारी पुस्तक अचूक चिकित्सा विधान दूसरा खण्ड देखना चाहिए।

मसूरिका

चेचक को संस्कृत में मसूरिका कहते हैं। मसूरिका रोग का वर्णन सुश्रुत और चरक में भी मिलता है। सुश्रुत ने क्षुद्र रोगाधिकार में इसका वर्णन किया है और चरक ने शोथ रोग में क्योंकि इस रोग में भी किंचित शोथ हो जाता है। चरक ने लिखा है—

या सर्व गात्रे पु मसूर मात्रा मसूरिका पित्त कफ प्रदिष्टा।

(चरक चि० १२ अ०)

अर्थात पित्त कफ के विकार से सारे शरीर में मसूर के आकार की मसूरिका निकलती है। सुश्रुत ने लिखा है—

दाह ज्वर रुजावन्त स्ताम्राः स्फोटाः सपीतकः।

गात्रेषु वदने चान्तेर्बिज्ञेयास्ता मसूरिका॥ (सु० नि० १३ अ०)

अर्थात दाह ज्वर और पीड़ा से युक्त लाल, या पीले स्फोट सारे शरीर

में मुंह पर और अन्दर भी निकलते हैं इनको मसूरिका कहते हैं।

चरक और सुश्रुत के समय में यह रोग क्षुद्र समझा जाता था। यह रोग इतना कम होता था कि इसको कोई प्रधानता नहीं दी जाती थी। आज वही रोग घोर रूप धारण किये हुए है और प्रति वर्ष वसन्त और गरमी के दिनों में इस रोग का जितना प्रकोप रहता है उतना किसी रोग का नहीं रहता। यह रोग अब बच्चों और बड़ों दोनों को होता है और बड़ा गम्भीर होता है। इस रोग से मृत्यु भी बहुत होती है। किसी अन्य ऋषि ने इसके विषय में लिखा है—

पित्तं शोणित संसृष्टं यदा दूषयतित्वचम्।
तदा करोति पिडिका सर्व गात्रेषु, देहिनाम्॥
मसूर मुद्ग माषाणांम् तुल्या कोलोपमा अपि।
मसूरिकास्तु ताज्ञेया पित्त रक्ताधिका बुधैः॥

अर्थात् पित्त और रक्त मिल कर त्वचा में विकार उत्पन्न करते हैं, तब शरीर में पिड़िका उत्पन्न होती है। वह पिड़िका मूंग, मसूर, उड़द और बेर के आकार की हो सकती है। विद्वान लोग उसे पित्त-रक्त से उत्पन्न मसूरिका कहते हैं।

कटवम्ल लवण क्षार विरुद्धाध्यशनाशनैः।
दुष्ट निष्पाव शाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः॥१॥
क्रूर ग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन दुष्ट रक्तेन संगताः॥२॥
मसूराकृति संस्थानाः पिडिका स्युमसूरिकाः।

अर्थात् कटु, अम्ल, लवण, क्षार, विरुद्ध भोजन, अध्यशन आदि कारणों से, सेम, दुष्ट शाक आदि के अधिक खाने से वात पित्त कफ आदि दोष कुपित होते हैं, तथा देश के ऊपर दुष्ट ग्रह शनिश्चर आदि की दृष्टि पड़ने से भी दोष कुपित हो जाते हैं और दुष्ट रक्त से मिल कर शरीर में मसूर के आकार की पिड़िका उत्पन्न करते हैं उसीको मसूरिका कहते हैं। भोजन के ऊपर फिर भोजन करने को अध्यशन कहते हैं।

कटु, अम्ल, लवण, क्षार, विरुद्ध भोजन और अध्यशन से रक्त की अम्लता बढ़ता है, क्षारता घटती है, साथ ही रोग निवारक शक्ति भी घट जाती है, रक्त में अम्लता बढ़ने से रोग निवारक शक्ति क्षीण होती है और दोष विषम हो जाते हैं। अम्ल शब्द रख कर अम्ल विपाक वाले भोजनों की ओर भी संकेत किया गया है। मैदा, चीनी, गुड़ खनिज लवणों से हीन भोजन, विटामिनों से हीन भोजन ये सब अम्ल विपाकी होते हैं। और रक्त में अम्लता बढ़ाते हैं। इसी को पित्त की वृद्धि कहते हैं।

पूर्व रूप

तासां पूर्व ज्वरः कण्डू गात्र भङ्गोऽरति भ्रमः।
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्र रागश्च जायते॥

जब यह रोग होनेवाला होता है तब पहले ज्वर होता है। किसी-किसी को ज्वर बहुत तीव्र हो जाता है, रोगी प्रलाप आदि भी करता है, सन्निपात की सी दशा हो जाती है। दो-तीन दिनों में ज्वर उतर जाता है और दाने निकल आते हैं। शरीर में तोड़ने की सी पीड़ा होती है, बेचैनी होती है, भ्रम होता है, चक्कर आता है, त्वचा में किंचित शोथ हो जाता है, रङ्ग कुछ विशिष्टता लिये हुए हो जाता है और आँखें लाल हो जाती हैं। किसी-किसी में कण्डु, शोथ और विवर्णता बिलकुल ही नहीं प्रगट होते।

वात पित्त, कफ, रक्त और सन्निपात इन कारणों से पाँच प्रकार की मसूरिका होती है। इन सब के अलग-अलग लक्षण शास्त्र में लिखे हैं। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र स्थानों में होने से ७ प्रकार की मसूरिका और होती है और सब के अलग-अलग लक्षण होते हैं। इन सब लक्षणों के लिखने से विस्तार बहुत बढ़ जायगा।

मोटे तौर से माता दो प्रकार की होती हैं छोटी माता और बड़ी माता। छोटी माता के दाने छोटे होते हैं दाने कम निकलते हैं ज्वर

भी इसमें कम रहता है। रोग शान्ति भी जल्दी हो जाती है। बड़ी माता या स्माल पाक्स में दाने बड़े-बड़े निकलते हैं और बहुत घने निकलते हैं। ज्वर का वेग बहुत तीव्र होता है। दाह प्रलाप आदि अधिक होते हैं, रोग देर में जाता है।

रोमान्त्रिका नामक एक माता और निकलती है एलोपैथी में जिसे मीजिल्स कहते हैं—

रोमकूपोन्नति समा रागिण्यः कफ पित्तजाः।
कासा रोचक संयुक्ता रोमान्त्यो ज्वर पूर्विका॥

कफ पित्त से उत्पन्न रोम कूपों के आकार की लाल रङ्ग की रोमान्तिका निकलती है। इसमें खाँसी, अरुचि, उपद्रव स्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं। प्रायः तीन दिनों में यह रोग शान्त हो जाता है। इसमें भी पहले ज्वर होता है।

साध्यासाध्य लक्ष

वायु से उत्पन्न, वात पित्त से उत्पन्न तथा कफ से उत्पन्न मसूरिका कष्ट साध्य है। सन्निपात से उत्पन्न असाध्य होती है। सन्निपात से उत्पन्न कोई मसूरिका प्रबाल के सदृश लाल रङ्ग की और बड़ी होती है, कोई जामुन के फल के समान बड़ी और काली होती है, कोई लोह जाल के समान, लोहे की गोली के समान, काली होती है कोई अलसी के फूल के समान नीली होती है। दोषभेद से यह अनेक प्रकार की होती है और असाध्य है।

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।
प्रलापश्चारति मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽति घूर्णता॥
मुखेन प्रस्रवेद रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा।
कंठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वासित्यत्यर्थ वेदनम॥
मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः।
लक्षणानि च दृश्यन्ते न दद्यात तत्र भेषजं॥

अर्थात् खाँसी, हिचकी प्रमोह, ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान नाश, एवं

ज्वर तीव्र हो, दारुण प्रलाप हो, बेचैनी हो, मूर्च्छा हो, प्यास हो, दाह हो, मुख से आँख से तथा नाक से रक्त गिरे, कण्ठ घरघराते हुए कष्ट के साथ सांस ले। मसूरिका से पीड़ित रोगी यदि इन लक्षणों से युक्त हो तो चिकित्सा नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह असाध्य लक्षण है।

एलोपैथी मत से चेचक

चेचक दो प्रकार की होती है छोटी माता और बड़ी माता। छोटी माता को अंगरेजी में चिकेन पाक्स और बड़ी माता को स्माल पाक्स कहते हैं। दोनों प्रकार की माता प्रायः एक ही प्रकार की होती हैं। छोटी माता कम सांघातिक है, बड़ी माता अधिक। दोनों भेदों को हम नीचे दे रहे है। एक माता और होती हैं उन्हें खसरा या मीजिल्स कहते हैं। इसे देशी भाषा में दुलारमती कहते हैं।

चिकेन पाक्स

यह छूतदार रोग है और एक प्रकार के कीटाणुओं से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। इस रोग की छूत कपड़ों से या हवा से लग जाती है। जब यह रोग होने को होता है तब ज्वर होता है, सिर में दर्द होता है पीठ में दर्द होता है और किसी-किसी को कै या वमन होती है। आँखों में पानी भर-भर आता है। दाने पहले हाथ पर निकलते हैं या मुंह या छाती अथवा पीठ पर निकलते हैं। कभी-कभी इन स्थानों पर केवल ललाई ही दृष्टि गोचर होती है। फिर दाने निकलते हैं फिर सारे शरीर में दाने निकल आते हैं। ये दाने पकते हैं और मवाद या पानी भर जाता है दाने फफोले का रूप धारण कर लेते हैं। दाने जब पूरे निकल आते हैं तब ज्वर का वेग कम हो जाता है। परन्तु नीर भर जाने पर फिर ज्वर बढ़ जाता है क्योंकि पीड़ा बढ़ जाती है। फिर दाने मुरझाने लगते हैं पानी सूखने लगता है। जिस क्रम से दाने निकलते हैं उसी क्रम से उनमें नीर भरता है। फिर मवाद सूख जाती है और पपड़ी पड़ जाती है और एक सप्ताह के बाद

पपड़ी छूट कर निकल जाती है। फिर एक पपड़ी या खुरंट और छूटती है। उसके बाद एक पतली पपड़ी और छूट जाती है और शरीर पर बदसूरत दाग रह जाते हैं। जब पपड़ी या खुरंट छूटती है तभी उसके साथ इस रोग के कीटाणु हवा में फैलते हैं और संक्रमण करते हैं। उसी समय यह रोग घर वालों में भी स्थान जमाता है। बहुत से बच्चे नीर भरने के समय और कुछ बच्चे दाने निकलने के समय में ही चल बसते हैं। यह बड़ी माता कहलाती हैं। शरीर में रोग प्रवेश करने तथा रोग के प्रगट होने में १२ दिन से १६ दिनों का समय लगता है।

स्माल पाक्स

यह रोग चिकेन पाक्स का ही भेद है। कीटाणुओं से इसकी भी उत्पत्ति मानी जाती है, छूत लगने पर रोग होने में लगभग १२ दिन लग जाते हैं। सिहरन, सिर दर्द और जोरों के ज्वर के साथ ही रोग का आरम्भ होता है। ज्वर के एक दो दिन बाद मुंह पर और हाथ में चमड़े के अन्दर छोटी-छोटी लाल गोटियाँ ज्ञात होती हैं फिर सारे शरीर में फैल जाती हैं। इस समय किसी-किसी का ज्वर गायब हो जाता है। परन्तु आठ दिनों बाद गोटियाँ बड़ी हो जाती है और उनमें नीर या मवाद भर आता है उस समय दर्द बढ़ जाने के कारण फिर ज्वर तेज हो जाता है। यदि रोगी बचने वाला होता है तो दाने सूखने लगते हैं और पपड़ी पड़ जाती और यह पपड़ी सूख जाती है। इस रोग में एक प्रकार की बदबू बदन से निकलती है। वह मवाद के कारण आती है जब माता अच्छी हो जाती है तब इसका दाग शरीर पर पड़ जाता है। प्रायः बारह दिनों में दाने सूखते हैं, १५ दिनों में पपड़ी छूटती है और ३ सप्ताह में रोग दूर होता है। यदि गम्भीर रूप होता है तो कई दाने आपस में सट जा और दानों का आकार बहुत बड़ा होता है। इसी रोग से मृत्यु संख्या अधिक होती है। इस माता के दाग जीवन भर रह जाते हैं।

मीजिल्स

यह रोग गर्म देश में अधिक होता है। यही कारण है कि हमारे देश में यह बहुत होता है। जाड़े के दिनों में इसका प्रकोप नहीं होता परन्तु गर्मी के दिनों में खूब होता है यही कारण है कि फाल्गुन से ही इस रोग का उभाड़ शुरू हो जाता है।

इस रोग की उत्पत्ति भी कीटाणुओं से होती है। यह भयानक छूत का रोग है। छोटे बच्चों को यह रोग बहुत होता है और बहुत से बच्चों की मृत्यु का कारण यही रोग होता है। छूत लगने के १४ दिनों बाद यह रोग उभड़ता है। सिर का जुकाम, सूखी खांसी और हलके ज्वर के साथ रोग उत्पन्न होता है। आँखों में आँसू बहुत आते हैं और नाक बहती है। इसके बाद मुंह लाल पड़ जाता है और गर्दन भी लाल हो जाती है। लाल ज्वर में भी बदन का रङ्ग लाल हो जाता है। यह ललाई इसलिए रहती है कि त्वचा के नीचे छोटे-छोटे दाने रहते हैं। यह दाने ऊपर हो जाते हैं। किसी-किसी में यह दाने बाहर से नहीं दिखाई पड़ते हैं गर्दन के बाद पीठ-पेट और पैरों में लालिमा होती है और सबसे अन्त में हाथों में होती है। दाने निकल आने के बाद भी थोड़ा ज्वर बना रहता है। इस रोग में निमोनिया, ब्रोंकाइटिस, और सूखी खाँसी अकसर हो जाती है। इस रोग में माता के दानों में मवाद नहीं पड़ता, दाने यों ही मुरझा जाते हैं और दब जाते हैं। अन्त में चमड़े पर से भूसी सी छूट जाती है।

जर्मन मीजिल्स नाम से एक प्रकार की मीजिल्स और होती है उसमें भी प्रायः वैसे ही लक्षण होते हैं। जो ऊपर लिखे गये हैं किन्तु इस जर्मन मीजिल्स में दाने किंचित बड़े होते हैं। और साधारण मीजिल्स में बहुत छोटे होते हैं। वस्तुतः मीजिल्स और जर्मन मीजिल्स में भेद करना बहुत ही कठिन है। एक प्रकार की मीजिल्स और होती है उसमें दाने काले निकलते हैं। यह काले दाने वाली मीजिल्स बहुत कम लोगों को होती है परन्तु बड़ी भयानक होती है। मीजिल्स को

साधारण बोल चाल की भाषा में दुलारमती माता कहते हैं यदि इसके दाने नहीं निकल पाते तो बच्चे मूर्ख से प्रतीत होते हैं उनमें चैतन्यता रह ही नहीं जाती, वे सुस्त रहते हैं और अक्सर मर भी जाते हैं। मीज़िल्स में आँखें कमजोर हो जाती हैं क्योंकि बाहरी नसों पर रोग के कारण दबाव पड़ता है। इसलिए इस रोग के इलाज में आँखों की रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।

चिकित्सा

चेचक का इलाज उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार ज्वर का होता है। इस रोग में उपवास करना चाहिए और सुबह-शाम दोनों समय गरम जल का एनिमा देना चाहिए। खाने-पीने के नाम पर केवल संतरे का रस देना चाहिए। यदि सन्देह हो कि दाने ठीक तरह नहीं निकले हैं तो स्टीम बाथ देना चाहिए। भाप स्नान से रुके हुए सब दाने बाहर आ जाते हैं। पीने के लिए गरम पानी देना चाहिए। शुरू में जीभ पर मैल बहुत जमती है जब जीभ पर मैल न जमे तब उसे केवल फल खाने को देना चाहिए। फलों में सेब, अंगूर, अनार, आदि अथवा वे मौसमी फल जो पथ्य हों दिये जा सकते हैं। जब रोग निर्मूल हो जाय तब क्रमशः रोटी सब्जी देना आरम्भ करना चाहिए और धीरे-धीरे मात्रा बढ़ानी चाहिए फिर बच्चों के लिए उचित भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें शरीर में जहर दुबारा न इकट्ठा होने पावे।

बड़ी माता और छोटी माता में खुजली बहुत होती है इसलिए सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा खुजलाने न पावे। खुजली देने से घाव बड़े हो जाते हैं और बहुत विलम्ब से अच्छे होते हैं। स्माल पाक्स में तो दाने आँख के भीतर तक निकल आते हैं और अगर असावधानी हो जाय तो आँख भी फूट जाती है। आँख में मक्खन लगाना अच्छा होता है। नीम के पानी से धोकर आँख पोंछ कर साफ करके मक्खन लगाने से घाव जल्द अच्छे होते हैं। चिकेन

पाक्स में आँख के लिए ऐसा कोई भय नहीं रहता। माता के दाने केवल शरीर के बाहर ही नहीं निकलते गला, छाती और आँतों तक में निकलते हैं। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ इलाज करने की आवश्यकता रहती है। यदि बच्चा बहुत तङ्ग करे और बिना खाये न माने तो उस हालत में थोड़ा दूध या फटे दूध का पानी दिया जा सकता है।

इस रोग में रोगी जो कुछ माँगता है औरतें प्रायः दे देती हैं। यह चलन हानिकारी है। तरकारी छौंकना और तेल घी लगाना जो इस रोग मना है इसका कारण यही है कि इनके द्वारा रोग का संक्रमण न हो। यदि रोग के आरम्भ में खाँसी का जोर बहुत रहे तो चेष्ट पैक (छाती पर गीले कपड़े की पट्टी) रखनी चाहिए।

दाने जब सूखने लगें तब खुजली से बचाने के लिए उस पर मक्खन या दूब का रस, हल्दी और तिल का तेल लगाया जा सकता है।

मीज़िल्स और जर्मन मीज़िल्स की भी वही चिकित्सा है जो ऊपर लिखी है। रोगी के पास भीड़ नहीं लगने देना चाहिए उसका कमरा स्वच्छ और हवादार होना चाहिए। खिड़की पर लाल वस्त्र टाँगने से उससे छन कर सूर्य की किरण आती है और अल्ट्रावायलेट किरणें पहुँचती है जिससे रोगी को बड़ा आराम मिलता है। जिन लोगों की तन्दुरुस्ती खराब हो और छूत लगने का डर हो उन्हें रोगी के पास नहीं जाने देना चाहिए।

यह रोग बच्चों को पूड़ी, पराठा, हलुवा, जलेबी बिसकुट, टाफी आदि अधिक खिलाने से ही होता है। क्योंकि ये पदार्थ शरीर में विजातीय पदार्थ पैदा करते हैं। ये कफ कारी पदार्थ हैं और विष पैदा करते हैं वह विष ही इस रोग का कारण है। मीजिल्स आदि तो इसलिए होते ही हैं कि शरीर से विष निकल जाय।

आयुर्वेदीय चिकित्सा

मसूरिका रोग में पहले वमन कराना चाहिए। वमन कराने के लिए परवल के पत्र, नीम की छाल और अडूस के काढे में, बच इन्द्र-जौ, मुलहठी और मैनफल का चूर्ण उचित मात्रा में मिला कर पिला कर वमन कराना चाहिए। वमन कराने पर दूसरे दिन विरेचन देना चाहिए इस प्रकार विष निकल जाने से मसूरिका स्वयं शान्त हो जाती है। जो लोग दुर्बल हों उनको शमन औषधि देनी चाहिए।

यथा—

सर्वासां वमनं पूर्वं पटोला रिष्ट वासकैः।
कषायश्च वचा वत्स यष्टयाह्व फल कल्कितैः॥
वान्त स्यरेचनं देयं शमन त्वबले नरः।
उभाभ्यां हृत दोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिका॥

वमन कराने के लिए ब्राह्मी का रस भी शहद से दिया जाता है। प्राचीन चिकित्सक दोषों को निकालने के लिए कितने प्रयत्नशील रहते थे यह ध्यान में रखने की यही बात है। कमजोर रोगियों को विरेचन के बदले एनिमा दिया जा सकता है। तथा अन्य सरल उपाय द्वारा चिकित्सक दोषों को बाहर निकाल सकता है। गरम जल में नमक मिला कर पिलाने से भी वमन हो जाती है।

जिस दोष की प्रबलता हो उसी दोष के अनुसार चिकित्सा करने की आवश्यकता रहती है। बहुत से प्राचीन चिकित्सक इस रोग में तथा शीतला रोग में चिकित्सा करना उचित नहीं समझते थे। कुछ चिकित्सक चिकित्सा करने की सलाह देते हैं। रोगी को शुद्ध रखना, रोगी के पास अशुद्ध व्यक्तियों को न जाने देना तथा, रोगी के पास जूता आदि न जाने देना आवश्यक है। रोगी को नीम के पत्तों के पंखे से हवा देना चाहिए। रोगी को अपथ्य भोजन नहीं देना चाहिए। शुद्ध जल आदि की व्यवस्था रखनी चाहिए। यदि जल में सन्देह हो तो

गरम करके ठण्डा करके वही जल देना चाहिए। इस रोग में गरम जल मना है। मुनक्के का पानी दिया जा सकता है। मिट्टी के बर्तन में मुनक्का या किशमिश भिगो देना चाहिए और मसल कर छान कर वही पानी देना चाहिए।

अनन्त मूल, चावल के धोवन के साथ पीस कर चटाना चाहिए। इससे रक्त शुद्ध होता है और मसूरिका शान्त होती है।

परवल के पत्र, गुडुच, नागर मोथा, अडूसा, धमासा, चिरायता, नीम की अन्तर छाल, कुटकी, पित्तपापड़ा इन सबको समान भाग लेकर दो तोला लेना चाहिए और आध सेर पानी में काढ़ा बनावे और आध पाव पानी रहने पर उतार करके ठण्डा करके रोगी को पिलाना चाहिए। इससे मसूरिका में बहुत उपकार होता है। इससे बिना पकी मसूरिका शान्त हो जाती है और पकी हुई शुद्ध हो जाती है। यह औषधि रात को भिगोकर सुबह छान कर भी दी जा सकती है।

चन्दन, अडूसा, नागर मोथा, गुडुच और मुनक्का इनको सम भाग लेकर पानी में भिगो कर और छान कर पिलाने से शीतला ज्वर शान्त हो जाता है।

इस रोग में प्राकृतिक चिकित्सा से विशेष काम लेना चाहिए। सामान्य औषधियों का ही उपयोग करना चाहिए। हमने अधिक औषधियाँ इस रोग में इसलिए नहीं लिखीं कि प्रायः इस रोग में औषधियाँ नहीं दी जाती हैं।

कोई शीतला बिना कष्ट के सुख से शान्त हो जाती हैं। कुछ शीतला बड़ी भयानक होती हैं और कष्ट से जाती है। और कुछ ऐसी होती हैं कि वह अच्छी हो जाय अथवा न भी अच्छी हो। कुछ ऐसी होती है कि लाख प्रयत्न करने पर भी आराम नहीं होती है।

मसूरिका रोग में भारी अन्न, तैल मालिश, परिश्रम करना, पसीना दिलाना, और वायु, क्रोध, धूप, अम्ल और कड़वे रसवाली चीज तथा

पाखाना पेशाब आदि वेगों का रोकना अपथ्य है। केला, द्राक्षा, दाडिम दूध, शीतल जल, कपूर मिला जल, आदि पथ्य है। जब अन्न देने की अवस्था आवे तब मूंग की दाल का पानी केले को उबली तरकारी आदि दी जा सकती है। फिर गेहूँ की रोटी पुराना चावल आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। मसूर, मूंग चना, आदि का जूस भी दिया जा सकता है। जो शीतला फूट जाय उस पर जङ्गली कण्डे की राख छिड़कनी चाहिए। आँखों में यदि विकार हो तो आँखों को हलका सेकना चाहिए। मक्खन का लेप भी आराम देता है।

डिफथीरिया

आयुर्वेद में रोहिणी नामक एक रोग का वर्णन है। वह गले में होता है, उसका समावेश डिफथीरिया में हो जाता है। उसकी सम्प्राप्ति में लिखा है—

गलेऽनिलः पित्त कफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्यमांस च तथैव शोणितम्।
गलोप संरोध करैस्तथांकुरै निहत्यसून व्याधिरियंतु रोहिणी॥

अर्थात् गले में पित्त वायु और कफ मूर्च्छित हो करके रक्त और मांस को दूषित करके गले को घेर लेने वाले या रोक देने वाले अंकुर या झिल्ली उत्पन्न कर देते हैं यह रोहिणी रोग है और शीघ्र ही प्राणों का नाश करने वाला है। यह त्रिदोष—वात पित्त और कफ के बिगड़ने से उत्पन्न होता है। इसी कारण शीघ्र मारक है। त्रिदोषात्मक होने पर भी जिस दोष की विशेषता होती है उसी दोष के नाम से रोग माना जाता है। एलोपैथी के जितने लक्षण हैं सब ऊपर के एक श्लोक में ही आ गये हैं। यह रोहिणी रोग पाँच तरह का होता है वातज रोहिणी, पित्तज रोहिणी, कफज रोहिणी, सन्निपातज रोहिणी और रक्तज रोहिणी।

वातज रोहिणी

इसमें जीभ में चारों ओर वेदना होती है कण्ठ को रोक देने वाले मांसाकुर या झिल्ली उत्पन्न हो जाती है। और वायु सम्बन्धी

अनेक उपद्रव हो जाते हैं, आक्षेप (कनवलशन) आदि वात के उपद्रव हैं।

पित्तज रोहिणी

यह बड़ी जल्दी बढ़ती है जल्दी ही पकती है उसमें ज्वर बहुत तेज हो जाता है, इसी रोग में ज्वर १०४-५-६ तक जाता है।

कफज रोहिणी

यह धीरे-धीरे बढ़ती है, देर में पकती है ज्वर बहुत हल्का रहता है।

सन्निपातज रोहिणी

इसमें तीनों दोषों के लक्षण उपस्थित रहते हैं अर्थात् ज्वर तेज, विक्षेप, जुकाम, अरुचि आदि होते हैं। यह रोग वेग से बढ़ता है और रोके नहीं रुकता। यह रोग बड़ा गम्भीर है।

रक्तज रोहिणी

इसमें पित्त के से लक्षण होते हैं, यह असाध्य है और इसमें स्फोट या फफोले भी निकल आते हैं।

इस रोग के साध्य-असाध्य के सम्बन्ध में यह ऋषियों का निर्देश है—

सद्यः त्रिदोषजा हन्ति, त्र्यहात्कफ समुद्भवा।
पंचाहात् पित्त सम्भूता सप्ताहात् पवनोत्थिता॥

आरम्भ में ही अच्छी चिकित्सा से वातज, पितज, और कफज रोहिणी अच्छी हो सकती है। यदि देर की जाय और उचित चिकित्सा की व्यवस्था न हो सके तो कफज तीन दिनों में पित्तज ५ दिनों में, और वातज ७ दिनों में असाध्य हो कर मारक हो जाती है। परन्तु सन्निपातज रोहिणी आरम्भ से ही असाध्य है। अतः इसकी चिकित्सा ही नहीं है। फिर भी पथ्य की उचित व्यवस्था करनी चाहिए सम्भव है भाग्य से रोगी बच जाय।

डिफथीरिया—एलोपैथीमत

डिफथीरिया गले का रोग है बच्चों को यह बहुत अधिक होता है

परन्तु बड़ों को भी हो सकता है। आरम्भ में इस रोग का पता नहीं लगता। क्योंकि अकसर ऐसा होता है कि डिफथीरिया के आरम्भ में टांसिल में भी कुछ विकार आ जाता है और चिकित्सक आरम्भ में यही समझने लगता है कि टांसिल बढ़ रहे हैं।

इस रोग का प्रादुर्भाव कभी तो बहुत हलका होता है और कभी बड़ा सांघातिक होता है। इस रोग में अकसर हलका ज्वर आता है। गले में खराश रहती है और शक्ति क्षीणता के साथ-साथ कमजोरी रहती है गले में टांसिल में प्रदाह रहता है और वह लाल रहता है। अकसर एक ही टांसिल में प्रदाह रहता है, दोनों में प्रदाह हो ऐसा बहुत कम देखने में आता है। एक टांसिल पर एक झिल्ली दिखाई पड़ती है। इसका रङ्ग भूरा राख के रङ्ग का या ब्राउन किंचित लाल रङ्ग का होता है। यह झिल्ली किसी में मोटी होती है किसी में पतली होती है। इसका आकार छोटा ही होता है परन्तु यह बढ़ती है। ऐसा भी सम्भव है कि यह झिल्ली बहुत न बढ़े और यह भी सम्भव है कि झिल्ली बढ़ कर पूरे गले को ढकले। यह बढ़ कर नाक के छेद में प्रवेश कर सकती है और साँस लेने के लिए हवा न मिलने के कारण प्राण निकल जाना सम्भव है। ऐसा भी सम्भव है कि झिल्ली बढ़ कर गले के नीचे लेरिंग्स में भी चली जाय। यह भी सम्भव है कि झिल्ली एक टांसिल पर ही रही जाय और बढे नहीं।

डिफथीरिया का एक रूप और होता है। उसमें यह झिल्ली नहीं उत्पन्न होती, परन्तु टांसिल में प्रदाह हो जाता है, ज्वर रहता है और गले में डिफथीरिया के कीटाणु मिलते हैं। रोगी में कमजोरी रहती है। नाक में जब रोग का संक्रमण हो जाता है तब गले की ग्रंथियाँ विशेष रूप से बढ़ जाती है। रोगी में रक्त की कमी के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं, दुर्बलता बढ़ जाती है रक्त की कमी से शरीर पीला पड़ जाता है। दुर्बलता इतनी अधिक बढ़ती है कि हृदय भी कमजोर हो जाता है और हृदय की गति रुक जाने से भी मृत्यु होने

का डर रहता है।

गले की तालु में इस रोग का संक्रमण होता है ऐसी दशा में उस पर सफेद, पीला या हरा धब्बा पड़ जाता है।

जब लेरिंग्स में विकार चला जाता है तब उसे लेरिंजियल डिफ-थीरिया कहते हैं और जब नाक में चला जाता है तब नाक का डिफ-थीरिया या नाजल डिफथीरिया। इस रोग का प्रारम्भ हल्के जुकाम, गले में खराश, हल्की खाँसी के साथ होता है और ज्वर बहुत थोड़ा रहता है। नब्ज काफी तेज और कमजोर रहती है उसे देखते हुए ज्वर कहीं कम होता है। इस रोग की उत्पत्ति क्लेब्स लोएफ्लर नामक कीटाणु से मानी जाती है। रोग का संक्रमण होने के दो दिनों से ले कर १० दिनों के भीतर रोग उत्पन्न हो जाता है परन्तु अकसर चौथे दिन ही रोग उत्पन्न हो जाता है।

रोग के कीटाणु मुख चूमने, बात करने, हंसने, खाँसने, और छींकने आदि कारणों से एक से दूसरे को लगते हैं। वायु के द्वारा भी रोग के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंच जाते हैं और दूध आदि के द्वारा भी कीटाणुओं का संक्रमण होता है। दूसरे की रुमाल आदि इस्तेमाल करने से भी यह रोग संक्रमण कर सकता है। आरम्भ में इस रोग में जुकाम या खांसी नहीं होता बल्कि ज्वर होता है।

एलोपैथ चिकित्सक रोगों की उत्पत्ति कीटाणु से ही मानते हैं। परन्तु जब तक उन कीटाणुओं को पनपने देने के लिए पहले से शरीर में विकार नहीं रहता ये कीटाणु शरीर में जा कर भी रोग नहीं उत्पन्न कर पाते। बहुत से बच्चों में और बड़े लोगों में भी डिफथीरिया के कीटाणु काफी मात्रा में मिलते हैं परन्तु सब को डिफथीरिया का रोग नहीं होता है। रोग केवल उन्हीं को होता है जिनके अन्दर गलत तरीके के भोजन के कारण विकार भरा है, खनिज लवण और विटा-मिनों से रहित भोजन करने के कारण जिनके रक्त की अम्लता बढ़

गई है, जिनके शरीर में जीवनी शक्ति का ह्रास हो गया रहता है वे ही कीटाणुओं से रोगी होते हैं। अतः किसी भी रोग से बचने के लिए यह आवश्यक है कि शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ाई जाय, उचित आहार विहार द्वारा शरीर निर्विष रखा जाय, रक्त में अम्लता न आने दी जाय।

जो कृत्रिम झिल्ली बनती है उसमें मवाद, रक्त कणिका, दैहिक सूत्र और मरे हुए कीटाणु प्रभृति रहते । आरम्भ में यह झिल्ली नरम रहती है फिर कड़ी हो जाती है और पीली पड़ जाती है रोग यदि भयङ्कर हो तो यह झिल्ली श्याम वर्ण भी हो जाती है। बीमारी यदि बहुत अधिक बढ़ जाय तो रोगी प्रलाप करता है, ज्वर १०५ से १०७ तक बढ़ जाता है।

रोग के अन्त में कभी-कभी लकवा मार जाता । कुछ दिनों तक गले के नीचे कष्ट रहता है नाड़ी की गति घट जाती है ४० या ५० रह जाती है। मूत्राघात और मूत्र कृच्छ भी हो जाता है। कभी-कभी दृष्टि में विकार आ जाता है और एक ही चीज दो दिखाई पड़ती।

चिकित्सा

डिफ्थीरिया के इलाज के लिए डिफ्थीरिया का एक प्रतिविष आविष्कृत हुआ है। उसके इन्जेकशन से कहीं-कहीं आश्चर्य जनक लाभ होता है। परन्तु इस प्रतिविष से जितने लोगों को लाभ दिखाई पड़ता है उससे कहीं अधिक लोगों को नुकसान होता है। बहुत से बच्चे ही नहीं जवान लोग भी इस प्रतिविष के प्रभाव से मरते देखे गये हैं क्योंकि शरीर में प्रविष्ट होकर यह विष का ही प्रभाव अकसर दिखाता है। लोग मरते हैं विषैली औषधि के प्रभाव से और उनसे यह कहा जाता है कि ज्वर के कारण उनकी मृत्यु हो गई। किसी भी प्रकार का सीरम—रोग का पीव—शरीर में प्रवेश करना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है, विशेष करके बचपन में तो किसी भी रोग का सीरम शरीर में प्रवेश करना मनुष्यता के साथ शत्रुता करना है। इस

रोग का सीधा प्राकृतिक इलाज इस प्रकार होना चाहिए।

बच्चे को उपवास कराइए। उपवास में सन्तरे का रस दीजिए अथवा मिल सके तो अनन्नास का रस दीजिए। दूध बिलकुल ही बन्द कर दीजिए। सबेरे और शाम दोनों समय गरम जल का एनिमा दीजिए। रोगी को चित मत लेटने दीजिए उसे करवट लिटाइए जिस बगल डिफ्थीरिया का रोग हुआ है, जिधर झिल्ली बढ़ रही हो। जरूरत पड़े तो गरम पानी पीने को दीजिए। हर दो घंटे पर गले का पैक दीजिए। गले पर गीला कपड़ा लपेटकर ऊपर से फलालैन लपेट दीजिए। आप देखेंगे कि रोग घट रहा है और बच्चे का स्वास्थ्य लौट रहा है।

लहसुन का रस निकालकर उसमें थोड़ा सा गरम जल मिला कर गले में झींसी मारने (स्प्रे) से बहुत लाभ होता है। परन्तु यह झींसी मारने की क्रिया प्रत्येक १५-२० मिनट पर करनी चाहिए। अथवा यदि बच्चा बड़ा और समझदार हो तो उसके मुंह में लहसुन का जवा डाल देना चाहिए और बच्चे से कह देना चाहिए कि थोड़ा थोड़ा कुचल कर लहसुन का रस हर समय गले में पहुँचाता रहे और हर घंटे या आधे घंटे पर लहसुन का जवा बदलते रहना चाहिए। लहसुन के प्रयोग से झिल्ली बढ़ती नहीं, रुक जाती है और धीरे धीरे रोग के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं तथा गले की ग्रन्थियों का प्रदाह शान्त हो जाता है और डिफ्थीरिया का रोग दबने लगता है।

अदरक और नमक डाल कर पानी गरम करके और उसकी भाप लेने से तथा उसी पानी से गरारा देने से भी लाभ होता है।

जब रोग शान्त हो जाय, प्रदाह मिट जाय तब बच्चे को फल खाने को देना चाहिए और तीन दिन या आवश्यकतानुसार फलाहार कराने के बाद धीरे-धीरे रोटी-सब्जी पर आना चाहिए और बच्चे को उचित आहार की व्यवस्था करनी चाहिए और इस प्रकार का शुद्ध भोजन देना चाहिए जिसमें शरीर में फिर विकार न इकट्ठा होने पावे।

डिफथीरिया के इलाज में किसी अनुभवी चिकित्सक से परामर्श और सहायता लेना अच्छा है। जहाँ कोई सहायता मिलनी सम्भव न हो वहीं स्वयं इलाज हाथ में लेने का प्रयास करना चाहिए।

जो लोग कीटाणुओं को मारने का प्रयत्न करते हैं वे औषधियों द्वारा रोग के कीटाणुओं का नाश तो कर डालते हैं किन्तु विषैला अंश जो शरीर में पैदा हो गया रहता है, अथवा वह कीटाणु भी स्वयं उत्पन्न कर देता है उसे दूर करने का कोई भी उपाय वे नहीं करते अतः भविष्य में और भी भयानक रोगों के उत्पन्न होने के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया जाता है।

यदि रोग की रुकावटा न हो सके तो रोगी की जान संकट में पड़ जाती है और ट्रकियोटोमो नामक अपरेशन करने की आवश्यकता पड़ती है जिसमें थाईराइड ग्रन्थि में सावधानी से आपरेशन करके श्वास नली में शुद्ध वायु पहुँचाने की चेष्टा की जाती है। यह क्रिया कोई सिद्धहस्त सर्जन ही कर सकता है।

रोहिणी चिकित्सा

साध्य रोहिणी की चिकित्सा रक्त निकलवाकर, वमन कराकर औषधियों का धुवाँ पिला कर, कुल्ले और गरारे कराकर तथा नाक में औषधियाँ डाल कर करनी चाहिए। इस रोग की प्रधान चिकित्सा वमन करा देना और रक्त निकलवा देना है। आजकल चिकित्सक लोग रक्त नहीं निकालते इसी कारण इस रोग से मृत्यु-संख्या अधिक होती है। जिस स्थान पर रोग आक्रमण कर रहा हो वहीं से रक्त निकालना चाहिए उसके लिए बहुत अच्छे सर्जन की आवश्यकता रहती है।

वातज रोहिणी में रक्त निकलवा कर नमक लगादे और बार बार गरम गरम घी या तेल या औषधियों से पकाये हुए तेल को मुंह में लेकर कुछ देर रखे। पित्तजरोहिणी में रक्त निकलवा कर शहद, प्रियंगु और मिश्री का लेप करे। कफज रोहिणी में रक्त निकलवाकर सोंठ

मिर्च और पीपरि का लेप करे। मैनफल, चमेली वायबिडंग, अपामार्ग और दन्तीमूल तथा सेंधा नमक डालकर विधिसे सिद्ध किये तेल से कुल्ले करें, मुंह में रखे और नाक में टपकावे।

पथ्य वैसा ही रखे जैसे प्राकृतिक चिकित्सा में बताया गया है।

स्कारलेट फीवर

स्कार्लेट फीवर या लाल ज्वर संक्रामक व्याधि है, यह छूत द्वारा एक से दूसरे को होती रहती है। यह रोग कफ या थूक के द्वारा एक से दूसरे के पास पहुँचता है, बात करने में, जूठा खाने में, खाँसने में रोग के कीटाणु रोगी के मुख से बाहर निकलते हैं और स्वस्थ आदमियों में प्रवेश कर जाते हैं।

जब रोग आरंभ होता है तब गले में खराश होती है, सिरमें दर्द रहता है, बेचैनी रहती है और थकावट मालूम होती है और कै होती है। ज्वर लगभग १०३ डिग्री तक रहता है। दो दिनों बाद गले के पास या छाती में लाल चकत्ता-सा दिखाई देता है उसमें तेज सुर्ख धब्बे या दाने रहते हैं और वह सारे शरीर में फैल जाता है। केवल मुंह में नहीं फैलता और मुंह पीला पीला दिखाई पड़ता है। ज्वर बढ़ कर १०६ डिग्री तक हो जाता है। उसी अनुपात में नाड़ी की गति और श्वास बढ़ जाते हैं। जीभ आरंभ में सफेद रहती है बाद को लाल हो जाती है और स्ट्राबेरी के रंग की हो जाती हैं। गले की टांसिल्स में प्रदाह हो जाता है, वे लाल हो जाती हैं उनमें पीले-पीले दाग पड़े रहते हैं और सूजन भी रहती है, टांसिल्स बीच की ओर बढ़ती हैं। और निगलने में बड़ा कष्ट होता है। छः सात दिनों बाद रूसी-सी छूटती है और लाल धब्बे गायब होने लगते हैं।

इस रोग में गले का खराश और टांसिल्स का प्रदाह खास लक्षण हैं। बहुत से ऐसे रोगी भी पाये जाते हैं जिनका शरीर लाल नहीं होता परन्तु उनके गले की टांसिल्स का प्रदाह रहता है। इस प्रकार के

विष प्राप्त टांसिल्स के रोग को भी एलोपैथ स्कारलेट फीवर कहते हैं।

इस रोग में अनेक उपद्रव उठ खड़े होते हैं, कानों में प्रदाह होता है, कान के भीतर दर्द हो सकता है और पक जाने के कारण मवाद भी आ सकता है। कानों का प्रदाह और नेफ्राइटिस तो रोग के लक्षण मिट जाने पर होते हैं। अकसर पेशाब में एलब्यूमिन जाने लगता है। गले की ग्रन्थियों में प्रदाह हो जाता है। गुर्दे की दशा बिगड़ जाती है और उसमें भी प्रदाह हो जाता है। इसकी पहचान यह होती है कि पाँव और चेहरे पर शोथ हो जाता है। पेशाब ईंट के रंग का अथवा किंचित रक्त मिश्रित आता है।

यदि ऊपर बताये गये रोगों में से कोई रोग दिखाई पड़े तो चिकित्सक का ध्यान उधर जाना चाहिए।

ऊपर जो स्कारलेट फीवर के उपद्रव बताये गये हैं वे इस बात को ओर संकेत करते हैं कि शरीर में विषाक्त पदार्थों की बहुलता है, जब पुराने ढर्रे के चिकित्सक इस रोग का इलाज करते हैं और शरीर से विष निकालने का प्रयत्न न करके रोग के लक्षणों को दबाने के लिए अन्य विषैली औषधियों का प्रयोग करते हैं तभी वे सारे उपद्रव खड़े होते हैं। इस रोग का ही नहीं सभी रोगों का सही इलाज यह है कि रोग को दबाने की जरा भी चेष्टा न की जाय। दोषों को निकाल कर शरीर को निर्दोष बनाया जाय।

चिकित्सा

जैसा अन्य ज्वरों में होता है इस ज्वर में भी प्रधान इलाज उपवास है। उपवास के समय केवल संतरे का रस दिया जाय। पीने के लिए पानी गरम करके ठंडा किया हुआ दिया जाया। सन्तरे का रस यों भी दिया जा सकता है और पानी में मिला कर भी दिया जा सकता है। गरम पानी से सवेरे शाम दोनों समय एनिमा दिया जाय। उपवास तब तोड़ा जाय जब ज्वर बिलकुल न रहे, नार्मल हो जाय, और जीभ बिलकुल साफ हो जाय। जब दोनों लक्षण स्पष्ट हो जायं

तब उपवास तोड़ने का समय समझना चाहिए। तब फलाहार कराना चाहिए। फलाहार १० दिनों तक कराने के बाद धीरे-धीरे रोटी सब्जी और बच्चों का पूरा आहार देना शुरू करना चाहिए। एक बारगी भोजन ऐसा न बढ़ा दिया जाय कि वही रोग या कोई अन्य नया रोग आ घेरे। उपवास के दिनों में सारे शरीर की और गले की गीली पट्टी लगाने से बड़ा लाभ होता है। लालज्वर में पित्त का प्रकोप विशेष रहता है। पित्त को शान्त करने के लिए ठंडी पट्टी बड़ा अमोघ काम करती है। जब रोग दूर हो जाय और कमजोरी दूर होने लगे तब पानी में नमक डालकर उसी पानी से सप्ताह में दो तीन बार स्नान करने से नीरोगता जल्द आती है।

मम्प्स

कान की जड़ में होनेवाले दो प्रकार के रोगों का वर्णन आयुर्वेद में है। एक को पाषाण गर्दभ कहते हैं और दूसरे को कर्णमूल। पाषाण गर्दभ का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

वात श्लेष्म समुद्भूतः श्वयथुर्हनु सन्धिजः।
स्थिरो मन्द रुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाण गर्दभः॥

अर्थात् हन्वस्थि की सन्धि में वात कफ से शोथ उत्पन्न होता है, वह कड़ा चिकना और मन्द वेदनावाला होता है। इसे पाषाण गर्दभ कहते हैं।

कर्णमूल में ज्वर होता है। इसके सम्बन्ध मे लिखा है—

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा ज्वरानान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः।
क्रमेण साध्यः खलु कष्ट साध्यः तत्त्वसाध्यः कथितोभिषग्भिः॥

अर्थात् ज्वर के आदि में, ज्वर के मध्य में, या ज्वर के अन्त में कानों की जड़ में शोथ पैदा होता है, वह क्रमश साध्य, कष्ट साध्य और असाध्य होता है। पहले शोथ हो उसके बाद ज्वर हो यह साध्य है, ज्वर के मध्य में यदि शोथ हो तो वह कष्ट साध्य है और ज्वर के अन्त में या सन्निपात के अन्त में हो तो असाध्य होता है। ज्वर में

शामक चिकित्सा करने से ही सन्निपात-ज्वर के अन्त में शोथ हो जाता है और बहुत प्रयत्न करने पर जाता है।

मम्प्स अंग्रेजी नाम है। यह रोग कान की जड़ में होता है। इसे गलसूआ भी कहते हैं। एलोपैथी के मत से यह छूत का रोग है और एक बच्चे से दूसरे बच्चे को हो सकता है। यह रोग अकसर बच्चों को हुआ करता है। कान के नीचे एक ग्रन्थि है, उसे अंग्रेजी में पैरोटिड कहते हैं। और उसके आस पास दो-तीन और छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं। पैरोटिड ग्रन्थि में प्रदाह, दर्द युक्त सूजन हो जाने से ही यह रोग होता है। कान की जड़ में दर्द होता है और सूजन हो जाती है। जबड़े दर्द के साथ खुलते हैं। कभी-कभी नहीं भी खुलते हैं। कभी-कभी सूजन का आकार त्रिभुजाकार होता है। कभी-कभी गाल, जबड़ा और कान के पीछे का समूचा अंश सूज जाता है। सूजन के साथ-साथ ज्वर भी रहता है। ज्वर और सिर दर्द होकर यह रोग होता है। बसन्त और पतझड़ के मौसिम में यह रोग अकसर होता है। ऐलोपैथ डाक्टरों का विचार है कि एक मास तक इस रोग का विष शरीर में रहने के बाद यह रोग होता है। वस्तुतः यह रोग दूषित भोजन से सम्बन्ध रखता है। पैरोटिड ग्रन्थि से लार या सालिवा बनता है और प्रणाली द्वारा मुंह में पहुँचाया जाता है। यह लार भोजन पचाने में सहायक होता है और मुंह में गीलपन कायम रखता है, सूखने नहीं देता। जब मम्प्स हो जाता है तब लार बनने की क्रिया में रुकावट पड़ती है और मुख सूखा रहता है। कभी-कभी दोनों ओर की ग्रन्थियों में एक साथ ही प्रदाह होता है। कभी-कभी एक के बाद दूसरी में होता है। हर एक ओर की सूजन और दर्द दूर होने में एक-एक सप्ताह का समय लगता है। इस रोग में एक बड़ी विचित्रता यह है कि यदि यह रोग लड़कों को होता है तो बहुतेरों के अण्डकोष में भी दर्द हो जाता है। लगभग ३० प्रतिशत रोगियों को यह उपद्रव हो जाता है। लड़कियों को जब यह रोग होता है

तब अक्सर उनके स्तनों और गर्भाशय में भी सूजन और प्रदाह हो जाता है।

चिकित्सा

एलोपैथ अनेक प्रकार के लेप और दवाइयाँ दिया करते हैं जिससे रोग दबता है। रोग का विष शरीर से बाहर नहीं हो पाता। इस रोग का इलाज इस प्रकार होना चाहिए जिसमें रोग भी मिट जाय और शरीर से विकार भी निकल जाय।

आरम्भ में दो या तीन दिन जैसी आवश्यकता हो उपवास कराना चाहिए और सन्तरे का रस तथा गरम जल देना चाहिए। यदि बच्चा इतने आहार पर न रह सके तो उसे दो दिन बाद थोड़ा दूध भी दिया जा सकता है। रोज दोनों समय गरम पानी का एनिमा देना चाहिए। सूजन के स्थान पर सेंक करना चाहिए। यह सेंक हर दो घण्टे पर करना चाहिए। सेंकते समय दो तीन गरम सेंक करके अर्थात् ५ मिनट तक गरम सेंक के बाद १ मिनट का ठंडा सेंक करना चाहिए। इस प्रकार एक बार आधे घण्टे तक सेंकना चाहिए।

जब ऐसी अवस्था हो जाय कि बच्चा जबड़ा चला सके और कुछ चबा सके तब उसे फल और दूध देना चाहिए। बच्चे के अच्छे हो जाने पर उसी ढङ्ग का भोजन आरम्भ करना चाहिए जैसा हमने अपनी पुस्तक हमारे बच्चे में लिखा है।

रियुमेटिक फीवर—वातजन्य ज्वर

रियुमेटिक फीवर का हिन्दी अनुवाद आम वात ज्वर होता है। वस्तुतः जिस ज्वर में वात और कफ प्रधान कार्य करते हैं उसी को एलोपैथ रियुमेटिक फीवर कहते हैं। कुछ समय पूर्व एलोपैथ यह समझते थे कि बच्चों को यह ज्वर नहीं होता, परन्तु अब सब मानते हैं कि होता है। इस रोग में लक्षणों की इतनी भिन्नता होती है कि पश्चिमी विज्ञानवेत्ता इसका निर्णय ही नहीं कर पाते। हमारा आयु-

वेद यह मानता है कि यह रोग किसी भी अवस्था के व्यक्ति को हो सकता है ।

इस रोग में गले में खराश होती है घुटना या ठेहुन का जोड़ लाल हो जाता है और उसमें दर्द होता है, जुकाक होता है, इसके बाद जोड़-जोड़ मे भी दर्द हो सकता है और ज्वर रहता है। यह तो सामान्य लक्षण है। एक प्रकार का ज्वर और होता है जिसमें शरीर की मांसपेशियों में ऐंठन और तनाव होता है और ज्वर रहता है।

वस्तुतः चीनी, चावल, पूडी, मिठाई, बरफी, हलवा, रबड़ी, मलाई, खीर, बिसकुट आदि अधिक खाने और मांस का अधिक इस्तेमाल करने तथा मछली, घोंघा, सीप, शंख आदि का मांस अधिक खाने से पाचन शक्ति पर दबाव पड़ता है और यूरिक एसिड़ बहुत बनता है। और रक्त में अम्लता पैदा हो जाती है। वह यूरिक एसिड नसों और हड्डियों के जोड़ों में इकट्ठा हो जाता है और रोग पैदा करता है।

जब रियुमेटिज्म का रोग होता है तब अक्सर हृदय का रोग हो जाता है। हृदय कमजोर हो जाता है। इस ज्वर के छूट जाने पर भी हृदय का रोग तो बना ही रह जाता है। हृदय रोग उसी समय धर दबाता है जब आरम्भ में ही ऐसे चिकित्सकों से इलाज कराया जाता है जो रोग को दबाना ही जानते हैं और पथ्यापथ्य की कुछ भी व्यवस्था नहीं जानते और शरीर से दोषों को निकालने की चेष्टा नहीं करते।

चिकित्सा

जितने भी कफ सम्बन्धी रोग होते हैं उन सब का एक ही प्रकार का इलाज होता है। वह है उपवास। कफ के रोगों में यह नहीं समझना चाहिए कि कफ केवल उसी स्थान पर है जहां विकार दिखाई पड़ रहा है। बल्कि कफ सारी प्रणाली में, पाचक यन्त्रों में, गुरदे, लिवर आदि में, नसों में मांसपेशियों में और प्रत्येक कोष में प्रवेश कर गया रहता

है। और जब तक प्रत्येक कोष और अंग प्रत्यंग से कफ छाँटकर अलग न कर दिया जाय तब तक रोग निर्मूल नहीं हो सकता।

उपवास करने से सब स्थानों का कफ जलकर मल के रूप में निकल जाता है और कुछ साँस के साथ कार्बन डी आक्साइड के रूप में बाहर हो जाता है।

बच्चे को तब तक उपवास कराना चाहिए जब तक जोड़ों का दर्द, चिलकन, लाली और ज्वर एक दम न चले जायं। उपवास में संतरे का रस या पतले रसवाले फलों का रस दिया जा सकता है। गरम जल दिया जा सकता है। गरम जल में नीबू का रस और शहद मिला कर भी दिया जा सकता है। दूध एक दम बन्द रखा जाय। सबेरे और शाम दोनों समय गरम पानी का एनिमा दिया जाय। गले में खराश रहती है इसके लिए गले पर पनकपड़े की पट्टी रख कर फलालैन या सूखे मोटे गरम कपड़े लपेट देना चाहिए इसी को गले का पैक कहते हैं। जोड़ों के स्थानिक दर्द के लिए गरम जल में तौलिया डुबाकर उससे सेंकना चाहिए अथवा रबड़ के थैले में गरम जल भरकर उससे सेंकना चाहिए। गरम पट्टी के बाद ठंडी पट्टी रखकर सेंकने की विधि प्राकृतिक चिकित्सकों की है। रुई गरम करके भी सेंका जा सकता है परन्तु यह अनुभव में आया है कि इस रोग में सूखा सेंक उतना लाभदायक नहीं होता जितना गरम पानी का सेंक।

यदि आवश्यकता हो तो सारे शरीर का पैक भी दिया जा सकता है। एक या दो सारे शरीर की गीली पट्टी देने से ज्वर उतरने में सहायता मिलती है।

अध्याय ३

आमाशय और आंतो के रोग

अजीर्ण

अजीर्ण का रोग अकसर इस कारण होता है कि बच्चों को अधिक खिलाया जाता है। पेट में जमा हुआ भोजन न पचने के कारण सड़ता है, वायु पैदा करता है और अन्य विकार पैदा करता है। इसका प्रधान लक्षण यह है कि इसमें कै होती है, पेट में दर्द होता है और ज्वर हो जाता है। अजीर्ण रोग की दो अवस्थाएं होती हैं—तरुण और जीर्ण। तरुण अजीर्ण में जब गलत इलाज किया जाता है तब यह रोग पीछे पड़ जाता है और पुराना पड़ जाता है फिर इसके दौरे अकसर होते रहते हैं। जब गलग तरीके का भोजन और बहुत अधिक भोजन बच्चों को खिलाया जाता है तभी यह रोग होता है। जीर्ण अजीर्ण रोग में बच्चे को अकसर वमन हो जाया करती है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है उसका रङ्ग पीला पड़ जाता है, और वजन नहीं बढ़ता। रात को नींद ठीक तरह नहीं आती, जीभ पर एक सफेद रङ्ग की परत जमी रहती है और उसके सांस में दुर्गंध आती है। जीर्ण रोग में कभी तो दस्त नहीं आते और कभी दस्त आने लगते हैं। जब बच्चों को अजीर्ण के द्वारा दस्त आने लगते हैं तब अकसर दस्त में फटा हुआ दूध ही निकलता है। दाँत निकलते समय भी अकसर फटे-फटे दूध का दस्त होता है।

चिकित्सा

तरुण अजीर्ण में यह आवश्यक है कि बच्चे को दूध देना बन्द कर दिया जाय, उसे सन्तरे का रस दिया जाय। दूध फाड़ कर उसका पानी छान कर पिलाया जाय। बच्चे की अवस्था के अनुसार एक

बार से दो बार तक हलके गरम जल का एनिमा दिया जाय। बच्चों को एनिमा देने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक पानी न चढ़ाया जाय। यदि वमन का जोर अधिक हो तो पीपल की सूखी छाल लाकर उसे जला लेना चाहिए और उसे पानी में बुझा लेना चाहिए। वही पानी एक-एक चम्मच प्रति आधे घण्टे पर अथवा घण्टे-घण्टे पर देना चाहिए। नीबू का रस पानी में मिला कर एक-एक चम्मच देने से भी वमन में कमी हो जाती है। दो-तीन दिनों में ही सब शिकायतें दूर हो जाती हैं। फिर दो-तीन दिनों तक सन्तरे का रस अधिक दिया जाय और माता का दूध दिन-रात में दो-तीन बार दिया जाय और बच्चों को भोजन देने के लिए जो नियम हमारे बच्चे नामक पुस्तक में बताये गये हैं उसीके अनुसार भोजन और दूध आदि देना चाहिए।

जीर्ण अजीर्ण में भी शुरू में भोजन बन्द कर देना चाहिए और सन्तरे का रस देना चाहिए। यदि दस्त न आते हों तो रोज शाम को एनिमा दे दिया जाय। रोग दूर होने पर उचित भोजन और दूध की व्यवस्था की जाय। दस्त आते हों तो एनिमा न दिया जाय, ऐसी अवस्था में संजीवनी वटी देना उत्तम होता है। अथवा सौंफ का अर्क, पोदीने का अर्क, गुलाब का अर्क और इलाइची का अर्क चारों को एक में मिलाकर घण्टे-घण्टे भर पर बच्चे को एक-एक चम्मच देते रहना चाहिए।

पेट का दर्द

जब बच्चे के पेट में दर्द होता है तब वह अपने पाँव सिकोड़ लेता है, और जोर से रोता या चिल्लाता है। पेट छूने पर जिस स्थान पर दर्द होता है वहाँ से हाथ हटा देता अथवा रोने लगता है। दर्द के समय अकसर बच्चा ठहर-ठहर कर रोता है जब दर्द का वेग बढ़ता है तब रोना बढ़ जाता है। दर्द कम हो जाने पर उसका रोना भी कम हो जाता है। बच्चा भूख से भी रो सकता है परन्तु रोगा-

वस्था और भूख के रोने में अन्तर होता है। भूखे बच्चे को स्तन पिला दिया जाय तो वह रोना बन्द कर देता है। बच्चों को पेट के दर्द का रोग अकसर दो मास से छः मास की अवस्था तक अधिक होता है। माता के भोजन में गड़बड़ी होने के कारण ही यह अकसर होता है। कभी-कभी इस कारण भी यह रोग हो जाता है कि बच्चों को अधिक दूध पिला दिया जाता है और वह पचता नहीं गैस बनने लगता है। हवा खुलने और गैस के निकल जाने से पेट का दर्द आराम हो जाता है।

चिकित्सा

गुनगुना पानी बच्चे को थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए। थोड़े गरम जल का हलका एनिमा दे देने से दर्द में उसी समय लाभ हो जाता है। जब तक दर्द चला न जाय तब तक भोजन नहीं देना चाहिए। दूध देने की भी आवश्यकता नहीं है। बच्चे का पेट गरम तौलिया से सेंकने से पेट के दर्द में आराम मिलता है। छोटी बोतल में गरम पानी भर कर उससे पेट सेंकने से भी लाभ होता है। (१) नाभी पर हींग का गरम-गरम लेप करने से भी लाभ होता है। (२) हिंग्वष्टक चूर्ण खिलाने से भी दर्द दूर हो जाता है। (३) शङ्ख की भस्म आधी रत्ती, आधी रत्ती सोंठ का चूर्ण और जरा सा हींग एक में मिलाकर खिलाने से पेट के दर्द में लाभ होता है। यह एक खुराक दवा है आवश्यकतानुसार तीन-चार खुराक दवा एक दिन में दी जा सकती है।

बच्चे के आराम होने पर बच्चे को चार-चार घण्टे पर दूध देना चाहिए और रात को १० बजे के बाद दूध नहीं देना चाहिए। बच्चों को भोजन देने का यही सही नियम है। माता को अपना भोजन दुरुस्त करना चाहिए। जो चीजें प्रसूता स्त्री को हानिकर बताई गई हैं उन्हें त्याग देना चाहिए और समय पर सुपच और पथ्य भोजन करना चाहिए।

कोलाइटिस (वृहदान्त्र प्रदाह)

देखिए छूतदार अतीसार।

कब्ज

कब्ज का रोग बहुत कष्टदायक रोग है, बचपन से यदि यह रोग हो जाय तो अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। सभी रोगों की जड़ कब्ज ही है। कब्ज जब होता है तब बाहर से देखने में तो यही जान पड़ता है कि दस्त नहीं हुआ। परन्तु यह रुका हुआ मल भीतर रुक कर रक्त को विषैला बना देता है। रक्त के विषैला होते ही, शारीरिक, मानसिक और स्नायविक अनेक रोग हो जाते हैं। बच्चों को जब कब्ज होता है तब कभी-कभी ये लक्षण पैदा हो जाते हैं—बच्चे को ठीक से रात को नींद नहीं आती, बेचैनी रहती है, पेट में दर्द होता है, पेट में ऐंठन रहती है। कब्ज के कारणों पर विचार किया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि मिथ्या आहार विहार के ही कारण यह रोग होता है। बार बार खाना, कभी देर से खाना, कभी सबेरे खाना, भोजन करने के बाद बिना उसके पचे ही फिर भोजन कर लेना, मैदा, चीनी, हलुवा, पूड़ी, पालिश किया चावल, साबूदाना आदि खाने से भी कब्ज होता है।

चिकित्सा

बच्चों के कब्ज की चिकित्सा के सम्बन्ध में यह याद रखने की बात है कि बच्चे कई अवस्था के होते हैं। उनकी अवस्था के अनुसार चिकित्सा करने की आवश्यकता पड़ती है। बच्चा शिशु हो सकता है और केवल माता के दूध पर रहने वाला हो सकता है। और दो-तीन चार-पाँच बरस का बालक हो सकता है तथा उसका भोजन दूध और अन्न मिश्रित हो सकता है। कुछ बच्चे ऊपर के भोजन पर पाले जाते हैं। इन सब की चिकित्सा इनकी अवस्थानुसार करनी पड़ेगी।

यदि बच्चा शिशु है और केवल माता के दूध पर रहता है और

इस अवस्था में यदि उसे कब्ज रहे तो समझना चाहिए कि माता का भोजन कब्ज करनेवाला है। उसी भोजन का दूध बन रहा है। और उसे पीकर बच्चा रोगी हो रहा है। ऐसी दशा में माता का भोजन दुरुस्त करने की आवश्यकता पड़ती है। हमारे पास अकसर ऐसे बच्चे इलाज के लिए आते हैं। माताओं से यह कहने पर कि आप ऐसा भोजन करती हैं जो कब्ज करनेवाला है बहुत सी माताएं यह उत्तर देती हैं कि मुझे तो कब्ज नहीं रहता उसी भोजन से बच्चे को कैसे कब्ज रहने लगा। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि बच्चे की शक्ति और माता की शक्ति में अन्तर होता है जो भोजन माता को कब्ज नहीं करता वही भोजन बच्चे को कब्ज कर सकता है। इसलिए माता का भोजन अवश्य बदलने की आवश्यकता पड़ती है।

कब्ज दूर करने के लिए कोई दस्तावर औषधि नहीं देनी चाहिए। आयुर्वेद के मत से १६ वर्ष की अवस्था के पहले दस्तावर दवा बच्चों को देनी ही नहीं चाहिए। दस्तावर दवा देने से बच्चों की आँतें सदैव के लिए खराब हो जाती हैं। कैस्ट्रोफोन या कैस्टर ऑयल अथवा रेंड़ी के तेल जैसी दस्तावर दवाएं भी हानि से खाली नहीं हैं। हमारी राय में इनको भी बच्चों को नहीं देना चाहिए।

यदि बच्चा छोटा है तो उसे एक दिन या उससे कम जैसी उसकी अवस्था हो उसके अनुसार उसे फलों के रस पर रखना चाहिए। फलों के रस में सन्तरे सबसे अच्छे होते हैं। हलके गरम जल से थोड़े पानी का एनिमा बच्चे को दे देना चाहिए और बच्चे को समय पर दूध पिलाना चाहिए। बच्चे को ४-४ घण्टे पर दूध देना चाहिए। और बीच-बीच में सन्तरे का रस देते रहना चाहिए। बच्चों को भोजन देने के सम्बन्ध की जानकारी के लिए देखिए हमारी पुस्तक हमारे बच्चे। माता के भोजन को दुरुस्त कीजिए। चोकरदार आटे की रोटी दीजिए। हरी सब्जी दीजिए, फल दीजिए। दो बार भोजन दीजिए और आवश्यकता हो तो दो बार फलों का नाश्ता दीजिए। यदि माता को कब्ज

रहता हो तो उसे भी एनिमा दीजिए। चाय, काफी, चीनी, मैदा, आदि बन्द कीजिए। माता के भोजन की जानकारी के लिए देखिए हमारी पुस्तक हमारे बच्चे।

यदि बच्चा २-३-४ या पाँच बरस का हो तो उसे दो तीन दिनों तक सन्तरे के रस पर रखा जा सकता है। हलके गरम जल से थोड़े पानी का एनिमा देना चाहिए। यह एनिमा रसाहार के दिनों में रोज देना चाहिए और दूसरे तीसरे अथवा सप्ताह में एक दिन अवश्य एनिमा दे देना चाहिए। बच्चों के भोजन में फल और शाक तरकारियों का उपयोग बढ़ाइए। नियम से भोजन दीजिए। बच्चों को धूप और खुली वायु में खूब खेलने और दौड़ने दीजिए, व्यायाम करने दीजिए। भोजन में पालक का रस दीजिए। यदि बच्चें को बाहरी तैयार भोजन दिया जाता हो जैसे डिब्बे का दूध या डिब्बे में बन्द भोजन आदि तो इनको बन्द कर दीजिए और सादा साधारण भोजन जिसमें फल और तरकारियाँ अधिक हों दीजिए। गाय या बकरी का ताजा दूध दीजिए। सन्तरे का रस दीजिए। यदि अन्न खानेवाला बच्चा हो तो चोकरदार आटे की रोटी आदि दीजिए। बच्चों को गोश्त मत खिलाइए।

एनिमा का प्रयोग और भोजन सुधार से कब्ज जड़ से मिट जाता है। यदि किसी अवस्था में औषधि प्रयोग करना पड़े तो खानेवाली औषधि मत दीजिए। बच्चे के पेट पर औषधियों का लेप किया जा सकता है। लेप से दस्त भी हो जाता है और कोई हानि नहीं होती।

रेंड़ी के बीज, कुटकी और मुसब्बर अन्दाज से लेकर रेंड़ी के तेल से पीस लीजिए और गरम करके बच्चे के पेड़ू पर लेप कीजिए। एक लेप में अगर दस्त न हो तो ४ घंटे पर फिर लेप कर दीजिए। एक दो दस्त हो जायंगे। दस्त कराने के लिए कभी-कभी चिकने अच्छे साबुन की बत्ती लगाई जाती है। ग्लीसरीन की बत्ती लगाकर भी दस्त कराया जाता है परन्तु इस प्रकार के उपचार से तत्काल लाभ होता है। जड़

से रोग दूर करने के लिए भोजन सुधार आवश्यक है।

कभी-कभी खुश्की के कारण बच्चों को कब्ज रहने लगता है। ऐसी अवस्था में फलों के सलाद में थोड़ा सा मक्खन मिलाकर खिलाने आँतें चिकनी हो जाती हैं और कब्ज मिट जाता है।

अतीसार

अतीसार दस्त आने के रोग को कहते हैं। दस्त आने के अनेक कारण हो सकते हैं। दस्त आने का साधारण रोग अकसर अधिक भोजन कर लेने या अनावश्यक पदार्थ खा लेने से हो जाता है। इसमें कोई खतरा नहीं रहता और एक या दो दिनों तक भोजन बन्द कर देने और एक आध बार एनिमा ले लेने से ही आराम हो जाता है। यदि बच्चा ऐसा हो जो बिना कुछ खाये पिये न रह सके तो उसे थोड़ा-थोड़ा सन्तरे का रस कई बार दिया जा सकता है। दस्त आने के रोग में भोजन बन्द कर देना सब से आसान और लाभदायक उपाय है। यदि दस्त आते हों और दूध या भोजन बराबर दिया जाय तो दस्त बन्द नहीं होंगे। यदि तेज औषधियाँ दे कर बिना पथ्य पालन के दस्त बन्द किया जाय तो पाचन शक्ति कमजोर हो जायगी और भयानक रोगों की जड़ पड़ेगी।

छूतदार अतीसार या कोलाइटिस

यह अतीसार दो प्रकार का होता है। अकसर यह रोग बच्चों को होता है। इंगलैंड में बच्चों के इस रोग को समर डायरिया कहते हैं क्योंकि वहाँ अकसर यह रोग गरमियों में होता है। इस रोग के कई भेद हैं। एक प्रकार के अतीसार का यह लक्षण होता है कि आरम्भ में ढीला और कुछ पतला पाखाना होता है और दिन भर में ८-१० बार तक होता है। पाखाने का रङ्ग हरा होता है और उसमें कफ आने लगता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रोग सामान्य अवस्था में चलता रहता है और कभी-कभी उग्ररूप में होता है तथा बड़ी आँतों

का प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। बड़ी आँतों में प्रदाह होने पर उसे कोलाइ-टिस कहते हैं।

इस रोग के दूसरे भेद का लक्षण यह होता है कि इसमें एकाएक दस्त होने आरम्भ हो जाते हैं और दस्त के साथ कै भी आने लगती है। थोड़ा ज्वर भी होता है, और अनेक दस्त आते हैं। दस्त का रङ्ग हरा होता है। आरंभ में दस्त में रक्त भी आ जाता है। दस्त बहुत पतला पानी जैसा होता है। कुछ दिनों के बाद दस्त का रंग हरा हो जाता है और उसमें कफ भी आने लगता है। कभी-कभी ज्वर तीव्र हो जाता है और दस्तों की संख्या अधिक नहीं रहती फिर भी रोग भयानक रहता है। डाक्टर लोग इस रोग का कारण जर्म्स बताते हैं। इस रोग में पित्त का जोर अधिक रहता है उसीके कारण बड़ी आँतों में प्रदाह हो जाता है और ज्वर भी रहता है। वस्तुतः यह त्रिदोष के कारण होता है। इसीलिए कष्ट साध्य होता है। जब रोग बढ़ जाता है तब उसका रंग भूरा भी हो जाता है। वस्ततुः यह रोग गलत तरीके के भोजन और रहन-सहन के कारण हो जाता है।

चिकित्सा

साधारण अतीसार के इलाज के सिलसिले में भी हम बता चुके हैं कि अतीसार का वास्तकि इलाज उपवास है। इस प्रकार के अती-सार में भी सब तरह का भोजन बन्द कर देना चाहिए यहाँ तक कि दूध भी बन्द कर देना चाहिए और केवल संतरे का रस या मोसम्बी का रस दिया जा सकता है। थोड़ा पानी भी दिया जा सकता है। यह याद रखने की बात है कि अतीसार के रोग में अधिक पानी देना भी रोग को बड़ा देता है। इस रोग में दोषों को निकाल देने के लिए सवेरे और शाम दोनों समय गरम जल का एनिमा देना चाहिए। एनिमा के पहले पेड़ू पर यदि मिट्टी की पट्टी रख ली जाय तो दस्त बन्द करने में भी काफी मदद मिलती है। दो तीन दिनों तक फलों के रस पर रहने से ही दस्त बन्द हो जाते हैं। जब दस्त बन्द हो

जाय तब थोड़ा मठा दिया सकता है। यदि बच्चा बहुत छोटा हो और ऐसी अवस्था हो कि मठा नहीं दिया जा सकता हो तो हलके, जल्द पचनेवाले फल दिये जा सकते हैं। इसके लिए पका केला अच्छा होता है। पका पपीता भी थोड़ी मात्रा में दिया जा सकता है।

यदि रोगी की दशा चिन्ता-जनक हो और स्वयं इलाज करने में माता-पिता डरते हों तो तुरन्त किसी चतुर चिकित्सक की सलाह लेना अच्छा होता है। अच्छा यह होता है कि आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता चिकित्सक से परामर्श लिया जाय। यदि खाने-पीने की गड़बड़ी न होने पावे तो रोग की गम्भीरता मिटने में संदेह नहीं रह जाता है। जब फल पचने लगे तब धीरे-धीरे उचित भोजन पर आना चाहिए।

पेचिश

बच्चों के लिए पेचिश का रोग भयानक समझा जाता है। इस रोग में भी बड़ी आँतों में प्रदाह हो जाता है उस प्रदाह के कारण दस्त में कफ आने लगता है। रक्त भी आने लगता है। इसे हिन्दी में आँव आना कहते हैं। इस रोग में दस्त थोड़ा-थोड़ा आता है और कई बार आता है तथा पेट में ऐंठन और मरोड़ होता है। यह गरम देशों में अधिक होता है। मरोड़ के दो लक्षण होते हैं। किसी-किसी रोगी को दस्त के पहले मरोड़ अधिक होता है और दस्त हो जाने पर दर्द और मरोड़ में आराम हो जाता है और किसी-किसी को दस्त के पहले तो दर्द कम रहता है और दस्त हो जाने पर दर्द बहुत बढ़ जाता है। इस पिछले लक्षणवाले पेचिश को एलोपैथ टेनेसमस कहते हैं। इस रोग में अकसर ऐसा होता है कि दस्त में मल नहीं निकलता केवल कफ या आँव ही निकलता है। उसमें रक्त मिला रहता है। किसी-किसी को रक्त नहीं निकलता केवल कफ ही या आँव निकलता है।

यह रोग एलोपैथ डाक्टरों के मत से कीटाणुओं के कारण होता है। परन्तु वस्तुतः यह रोग अधिक स्टार्च और प्रोटीन तथा मांस-

मछली आदि खाने के कारण होता है। वस्तुतः यह मन्दाग्नि के कारण होता है और देर में पचनेवाले और भारी भोजन के कारण होता है।

चिकित्सा

छूतदार अतीसार की चिकित्सा जिस प्रकार बताई गई है उसी प्रकार का इलाज इस रोग में होना चाहिए। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। और सन्तरे के रस पर रखना चाहिए और पेट में यदि दर्द अधिक हो तो गरम पानी में कपड़ा भिगोकर पेडू को सेंकना चाहिए। जब रोग आराम हो जाय तब फल खाने को देना चाहिए। जो फल कुछ कड़े हों उनका कुचल कर रस निकाल कर देना चाहिए। जब रोग दूर हो जाय तब भोजन क्रमशः देना चाहिए।

वमन

बच्चों को वमन होना अनेक रोगों का सूचक है। वमन कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है। अजीर्ण होने से वमन होने लगती है, बहुत अधिक खा लेने से भी वमन होने लगती है, स्नायविक रोग भी वमन का कारण हो सकता है। ज्वर रोग में भी वमन हो सकती है। कभी-कभी पित्त बहुत अधिक बढ़ जाता है और उसके कारण वमन होने लगती है। गलत भोजन के कारण रक्त में अम्लता आ जाने से भी वमन होने लगती है। इस प्रकार यह आसानी से समझ में आ जाता है कि वमन एक लक्षण है और अनेक रोगों में वमन हो सकती है। इलाज करते समय असल कारण का इलाज करने में जल्द सफलता मिलती है।

चिकित्सा

चिकित्सा करते समय कारण को दूर करने का प्रबन्ध कीजिए। यदि यह आसान न हो कि कारण का पता लग सके तो ऐसी दशा में बच्चों को पूर्ण आराम देना चाहिए। बिस्तरे पर लिटा रखना चाहिए भोजन बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। पीने के लिए जल देने की

आवश्यकता पड़े तो गरम जल दीजिए। यदि बच्चे की अवस्था कुछ बड़ी हो तो गरम जल में एक दो बूंद नीबू का रस डाल कर दे देना अच्छा होता है। गरम जल से एनिमा दे देना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो सन्तरे का रस भूख लगने पर दिया जा सकता है। इस उपाय से अजीर्ण का दोष मिट जाता है और वमन का रोग चला जाता है। यदि इस उपाय से लाभ न हो तो किसी अच्छे चिकित्सक को दिखा देना चाहिए।

(१) पीपल वृक्ष की छाल आग में जला कर वह जलता कोयला पानी में बुझा लेना चाहिए। यह बुझाया हुआ जल थोड़ा-थोड़ा पिलाने से वमन दूर हो जाती है पित्त शान्त हो जाता है।

(२) सौंफ का अर्क, पुदीने का अर्क, इलायची का अर्क और गुलाब जल चारों बराबर बराबर मिलाकर एक-एक चम्मच आधे-आधे घंटे पर देने से वमन बन्द हो जाती

(३) सौंफ, पुदीना, इलाइची और थोड़ी सी सोंठ पीसकर पानी में छान लेना चाहिए और थोड़ा गरम करके एक-एक दो-दो चम्मच पिलाते रहना चाहिए।

(४) एक दो बूंद अमृत बिन्दु एक घूंट पानी में मिला कर पिलाने से कै बन्द हो जाती हैं। कपूर, पिपरमेंट और जवाइन का सत तीनों औषधियाँ बराबर-बराबर लेकर साफ शीशी में डाल कर कार्क लगा दें थोड़ी देर में तीनों मिला कर पानी जैसी पतली चीज हो जायगी। इसी को अमृत बिन्दु कहते हैं।

अध्याय ४

हृदय, फेफड़े और गल के रोग

ब्रोंकाइटिस

ब्रोंकाइटिस सर्दी का ही एक भेद है। सर्दी बच्चों को अकसर हो जाती है। यह सर्दी कई तरह की होती है। किसी-किसी को सर्दी का जोर कम रहता है और ज्वर नहीं रहता या रहता भी है तो बहुत ही कम। जब सर्दी का जोर ज्यादा होता है तब ज्वर तेज हो जाता है। ज्वर १०२-१०३ डिग्री तक हो जाता है। जब सर्दी में कफ ढीला रहता है तब कफ आसानी से निकल जाता है कष्ट भी कम रहता है और थोड़ा ही खाँसने से कफ निकल जाता है अथवा स्वयं ही ढीला हो कर बह जाता है। जब कफ सूखा रहता है तब कफ नहीं निकलता। कभी-कभी कफ के अधिक सूख जाने के कारण एक प्रकार की सूखी खाँसी आने लगती है उसे हूपिङ्ग कफ या कुकुर खाँसी कहते हैं। एलोपैथी के चिकित्सक हूपिङ्ग कफ का कारण एक प्रकार के कीटाणु मानते हैं। ब्रोंकाइटिस सर्दी का ही एक भेद है। इसमें छाती की सभी केशिकाएं, श्लेष्मिक कलाएं, और श्वासपथ में कफ जम जाता है इसीको ब्रोंकाइटिस कहते हैं। यही रोग जब कुछ और बढ़ जाता है और इसका असर फेफड़े तक में पहुँच जाता है तब उसे ब्राँको निमोनिया कहते हैं। जबतक कफ ढीला रहता है और नाक से बहता रहता है तबतक ब्रोंकाइटिस या निमोनिया नहीं होता। जब कफ सूख जाता है तभी ब्रोंकाइटिस और निमोनिया होते हैं।

ब्रोंकाइटिस और ब्राँको निमोनिया रोगों के कारण एलोपैथी के चिकित्सकों के मत से कीटाणु ही हैं। परन्तु यह सिद्धान्त सही नहीं है। अनेक प्रकार के गलत और दोषपूर्ण भोजन से गला, नाक, कान के

रास्ते, श्वासपथ आदि रोगग्रस्त और विकार-ग्रस्त हो जाते हैं और उनमें एकाएक प्रदाह होकर कफ जमने लगता है। स्टार्चवाले भोजन जैसे मैदे की रोटी, हलवा, पूड़ी, चावल, मालपूवा, गुड़, चीनी, मिल की बनी सफेद चीनी, अंचार, चटनी, मुरब्बे आदि के खाने से कफ बढ़ता है और सर्दी, जुकाम और ब्रोंकाइटिस और ब्रांको निमोनिया आदि रोग होते हैं। जो लोग चाहते हों कि उनके बच्चों को ये रोग न हों उन्हें ऐसे गलत भोजन भूलकर भी अपने प्यारे बच्चों को नहीं देना चाहिए।

चिकित्सा

आरम्भ में बच्चों को उपवास करा दीजिए और उपवास काल में संतरे का रस दीजिए और गरम जल दीजिए। गरम पानी का थोड़े जल का एनिमा रोज दे देना चाहिए। संतरे के रस और गरम जल पर ३-४ दिनों तक रखना चाहिए या तबतक रखना चाहिए जबतक कि भयानक लक्षण दूर न हो जायं। यदि खाँसी बहुत दुःख देती हो और कफ ढीला न हो तो चेस्ट पैक देना चाहिए। दिन में दो तीन चेस्ट पैक और रात में या शाम को एक बार और देने से कफ जल्द ढीला हो जाता है और खाँसी में आराम मिल जाता है। रोग जब सामान्य दशा में आ जाय और थोड़े लक्षण शेष रह जायं तब फल खाने को दिये जायं। रोग निवृत्त हो जाने पर अन्न खाने को दिया जाना चाहिए। मैदा, चीनी, गुड़ आदि बन्द करना चाहिए और बच्चे के आराम हो जाने पर गुड़, चीनी, मिठाई आदि खाने की आदत को धीरे-धीरे बन्द कर देनी चाहिए। फल, तरकारियाँ, चोकरदार आटे की रोटी आदि खिलाना चाहिए अथवा जैसा हमने अपनी पुस्तक "हमारे बच्चे" में बच्चों को भोजन देने को लिखा है वैसा भोजन देना चाहिए।

यह याद रखिए कि छोटे बच्चों को सर्दी बहुत जल्द लग जाती है, उनकी शक्ति कम रहती है माता-पिता उनकी शक्ति का ठीक-ठीक

अन्दाज नहीं लगा पाते जितनी सर्दी बड़ों के लिए सहने लायक होती है उतनी ही सर्दी बच्चों को दुखदाई हो जाती है। सबेरे शाम भी बच्चे अकसर माता-पिता की लापरवाही से सर्दी खा जाते हैं। सात बरस तक बच्चों को ठंडे पानी से मत नहलाइए। गर्मी के दिनों में यदि नहला दिया जाय तो सर्दी के दिनों तो अवश्य ही ठंडे पानी से न नहलाना चाहिए।

रोग के आराम हो जाने पर यदि बच्चा बड़ा हो तो उसे गहरी साँस लेना सिखलाइए और खूब खेलने-कूदने दीजिए। गहरी साँस का अभ्यास करने से फेफड़े और गले आदि की श्लेष्मिक कलाएं बलवान हो जाती हैं और दुबारा रोग का आक्रमण नहीं होता।

अकसर ऐसा देखा जाता है कि जिन लोगों को बचपन में सर्दी का रोग अधिक होता रहता है। वे बड़े, जवान और बूढ़े होने पर भी जल्द सर्दी खा जाते हैं और पसली, स्वास, खाँसी आदि से कष्ट पाते रहते हैं। इसलिए बचपन से ही इस तरह का खान-पान और रहन-सहन रखना चाहिए कि इस रोग के होने की कोई संभावना ही न रहे।

सर्दी-जुकाम

सर्दी-जुकाम का साधारण लक्षण यह है कि छींकें खूब आती हैं, नाक से पानी बहता है किसी-किसी की आँखों से भी पानी बहने लगता है, ज्वर तेज रहता है। जब शरीर में विकार रहता है तब प्रकृति उस विकार को निकालने के लिए अकसर जुकाम पैदा करती है। जुकाम प्राकृतिक साधन है विकारों के निकालने के लिए। गलत तरीके के रहन-सहन के कारण जो दोष, जो विकार इकट्ठे हो जाते हैं वे ही विकार सर्दी जुकाम पैदा करने के कारण बन जाते हैं। जबतक शरीर में विकार न हो तबतक जुकाम या सर्दी हो ही नहीं सकती है। मैदा और स्टार्च वाले भोजन, गुड़, चीनी, इमली आदि खटाई अधिक खाने से तथा कफ बढ़ानेवाले रहन-सहन के कारण श्लेष्मिक कला

विकार-ग्रस्त हो जाती है और जुकाम या सर्दी का रोग हो जाता है। चाहे बच्चों को सर्दी-जुकाम का रोग हो चाहे बड़ों को सब के रोग एक ही कारण से होते हैं। यह बात नहीं है कि बच्चों को रोग किसी दूसरे कारण से हों और बड़ों को दूसरे कारण से। इसलिए जो माता-पिता अपने बच्चों को स्वस्थ और तन्दुरुस्त देखना चाहते हों उन्हें अपने बच्चों के भोजन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए और ऐसा भोजन देना चाहिए जो स्वास्थ्यवर्धक हो।

बहुत से लोग बच्चों को सर्दी से बचने के लिए बड़े मोटे-मोटे कई कपड़े हर समय पहनाए रखते हैं। इतने अधिक कपड़े पहनाने से चमड़े की स्वाभाविक क्रिया रुक जाती है। चमड़ा भी तो वायु को ग्रहण करता है और पसीने के रूप में शरीर से बहुत सा जहर निकाला करता है इस क्रिया में अधिक कपड़े बाधक होते हैं। चमड़े से सटा हुआ ऊनी कपड़ा बच्चों को हरगिज न पहनाना चाहिए। नीचे कोई सूती कपड़ा पहनाकर उसके ऊपर ऊनी कोट या जरसी आदि पहनाया जा सकता है। इतना कम कपड़ा भी नहीं पहनाना चाहिए कि बच्चा सर्दी खा जा जाय।

चिकित्सा

बच्चों को सर्दी जुकाम का इलाज करते समय एक या दो दिनों तक बच्चों को सन्तरे के रस पर रखना चाहिए। और हर तरह का भोजन बन्द कर देना चाहिए। यदि बच्चा छोटा हो और माता के दूध पर रहता हो तो उसके दूध पीने का समय ६-६ घण्टे पर कर देना चाहिए और दूध थोड़ा कम ही पिलाया जाय अथवा दूध भी बन्द कर दिया जाय और केवल सन्तरे का रस दिया जाय। एक ही या दो दिनों में जुकाम का जोर कम हो जाता है। इसके बाद एक या दो दिनों तक फल खाने को दे और थोड़ा-थोड़ा दूध दे। यदि कफ का जोर अधिक हो तो दूध बन्द ही रखना अच्छा है क्योंकि दूध से कफ बढ़ता है। फिर धीरे-धीरे भोजन पर आना चाहिए।

क्रूप

इस रोग को अयुर्वेद में क्या कहते हैं यह हम निर्णय नहीं कर सके। यह गले का रोग है और ६ मास से लेकर ५ बरस तक के बच्चों को होता है। बच्चों को ठंड लग जाने से अकसर यह रोग होता है। बच्चों का स्वरयन्त्र या लेरिंक्स बहुत तंग रहता है और स्नायु बहुत ही उत्तेजनापूर्ण होते हैं। ठंड लगने के कारण स्वरयंत्र की स्नायुओं में प्रदाह हो जाता है। कभी-कभी एक नकली झिल्ली भी पैदा हो जाती है। यह झिल्ली अकसर डिफथीरिया के कारण होती है। स्वरयंत्र में प्रदाह के कारण वहाँ दर्द और सूजन पैदा हो जाती हैं, बच्चा कष्ट से साँस ले पाता है। धीरे-धीरे गला बैठने लगता है और यदि रोग बढ़ता गया तो आवाज एक दम बन्द हो जाती है। बच्चों को ऐंठन होने लगती हैं। अकसर इस रोग से बच्चे मर जाते हैं।

अकसर ऐसा होता है कि रात को बच्चा जग जाता है, उसे साँस लेने में कष्ट होता है, गला बैठ जाता है, घाँब घाँव आवाज होती है या काँसे के टूटे बरतन पर मारने की सी आवाज आती है, खाँसी आती है। यह दशा ३-४ घंटे रहती है और सुबह होते-होते हालत में सुधार मालूम होने लगता है। दिन भर बच्चा अच्छा रहता है, रात को फिर रोग का दौरा हो जाता है। परन्तु यह दौरा हलका होता है। दूसरे दिन बच्चा फिर अच्छा दिखता है परन्तु रात को फिर रोग का दौरा हो जाता है। यह दौरा और भी हलका होता है। किसी-किसी का रोग इतने से ही आराम हो जाता है और किसी-किसी को ब्रोंकाइटिस-या श्वास-पथप्रदाह का रोग हो जाता है। इससे आगे बढ़कर निमोनिया, पसली चलना आदि भी रोग हो जा सकते हैं।

एलोपैथ तो सभी रोगों को कीटाणुओं द्वारा ही पैदा हुआ मानते हैं। परन्तु वस्तुतः यह रोग अजीर्ण के कारण होता है। गलत तरीके का

भोजन देने से विजातीय पदार्थ शरीर में जब इकट्ठा होता है तभी सर्दी लगने का अधिक भय होता है और उसी समय अधिक सर्दी लगती भी है।

चिकित्सा

इस रोग का इलाज यह है कि बच्चे को भोजन न दे कर दो तीन दिनों तक केवल सन्तरे के रस पर रखा जाय। कफ को ढीला करके स्वरयंत्र के प्रदाह को कम किया जाय। इसके लिए गरम जल में नमक और अदरक का रस डालकर बारबार गरारे कराये जायं, रूई गरम करके गला और छाती सेंकी जाय इस प्रकार गरमी पाकर कफ पिघल जायगा और आराम मिल जायगा। दूसरा उपाय यह है कि गले पर गीले कपड़े की पट्टी रखकर उसके ऊपर ऊनी कपड़ा रखकर बाँध दिया जाय। यह पट्टी भी दिन में कई बार लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस उपाय से भी कफ पिघल जाता है। इसीको गले पक कहते हैं।

लहसुन का रस शहद में मिलाकर कई बार बच्चे को चटाना चाहिए। लहसुन एक अव्यर्थ महौषधि है। इसका प्रभाव इन्जेक्शन से भी अधिक होता है। मकरध्वज दिया जा सकता है। बारह सिंघे की सींघ की भस्म से लाभ होता है।

बच्चा जब रोग-मुक्त हो जाय तब उसको तीन दिनों तक केवल फल और दूध पर रखा जाय और धीरे-धीरे स्वाभाविक भोजन दिया जाय। बच्चों का भोजन इस प्रकार का रखा जाय जिसमें उसका स्वास्थ्य उन्नत बने और विजातीय अंश न इकट्ठा होने पावे।

टानसिल और एडिन्वायड्स का बढ़ना

गले में दाहिने बायें दोनों ओर श्लेष्मिक ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों को टानसिल कहते हैं। एडिन्वायड्स भी गले में ही होती हैं। वे बहुत छोटी ग्रन्थियाँ हैं। इनका उपयोग स्वास्थ्य को कायम रखने

में होता है। किसी प्रकार के कीटाणु या अन्य हानिकारी पदार्थ गले में प्रवेश करने के पहले ही यहीं पर इन ग्रन्थियों के प्रभाव से रोक लिये जाते हैं। इन ग्रन्थियों से एक प्रकार का श्लेष्मिक रस निकलता है जिसके कारण गला हर समय तर रहता है और जो अनिष्टकारी या गन्दा पदार्थ गले के भीतर घुसना चाहता है वह उस तर पदार्थ में लिपटकर बाहर ही रह जाता है और हम खखार कर थूक या कफ के साथ उसे बाहर कर देते हैं। टानसिल्स सिर के कफ को भी निकाल कर सिर को साफ रखते हैं तथा गले के कफ को भी बाहर निकालते हैं। वस्तुतः शरीर से श्लेष्मिक मल या विजातीय पदार्थ निकालकर शरीर को स्वस्थ बनाने में इस अंग का उपयोग हमारा शरीर खूब करता है। हमारे शरीर को स्वस्थ रखने और भीतर से विषैला अंश निकालने के लिए यह बहुत उपयोगी अंग है।

जब भोजन इतना दोष-पूर्ण और कफ वर्धक हो जाता है कि उस बढ़े हुए कफ को निकाल सकना इस यंत्र के लिए कठिन हो जाता है। तब यह अंग स्वयं रोगी हो जाता है। अधिक मात्रा में रोटी और चावल खाना भी कफवर्धक है। दही, दही के पदार्थ, मिठाई, चीनी, गुड़, घी, मछली आदि खाने से भी कफ बढ़ता है। यह कफकारी भोजन ही सब प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। यह हमने पहले भी लिखा है। जब यह यंत्र या टानसिल स्वयं रोगी हो जाता है तब इसमें प्रदाह हो जाता है। उसमें दर्द होता है, सूजन हो जाती है और वे लाल हो जाते हैं। किसी-किसी के टानसिल इतने बढ़ जाते हैं कि गिलटी की तरह फूल आते हैं और उनमें बहुत अधिक वेदना और दर्द होता है। किसी-किसी को यह रोग कभी होता है और कभी दब जाता है। जब दौरा होता है तब जुकाम और ज्वर के साथ यह रोग शुरू होता है। किसी-किसी को सूजन बराबर बनी रहती है दर्द कभी घटता है, कभी बढ़ता है। इसी प्रकार एडिन्वायड्स भी बढ़ जाते हैं और उनमें भी प्रदाह हो जाता है

टानसिल का रोग यों तो अकसर बच्चों को ही होता है क्योंकि वे मिठाई, चीनी, गुड़ आदि बहुत खाते हैं, १२-१४ वर्ष तक के बच्चों को यह रोग अकसर होते देखा गया है परन्तु बड़ी उम्र के लोगों में भी यह रोग बहुत अधिक होता है। खाने-पीने की जिस गड़बड़ी के कारण यह रोग बच्चों को होता है उन्हीं गड़बड़ियों के कारण यह रोग बडों को भी होता है। जिन लोगों को यह रोग हो जाता है उनका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है।

एलोपैथ इस रोग की साधारण और सफल चिकित्सा इस यंत्र को निकाल देना ही समझते हैं परन्तु वस्तुतः यह बहुत ही गलत इलाज है। टानसिल को निकाल देने से रोग की जड़ नहीं कटती, रोग का दिखाई पड़नेवाला लक्षण कट जाता है। रोग का असली कारण मौजूद रहने के कारण जीवन में आगे अनेक भयङ्कर रोग उत्पन्न होने की आशङ्का रहती है। जिनके कारण जीवन संकट में पड़ जाता है। सावधान माता-पिता को चाहिए कि वे समझदारी से ऐसा भोजन बच्चों को दें जिससे यह रोग कभी हो ही नहीं, यदि संयोग से रोग हो जाय तो रोग की जड़ का इलाज करना चाहिए न कि लक्षण का। यदि आपको अपना बच्चा प्यारा है, आप उसके शुभचिन्तक हैं तो टानसिल का आपरेशन मत कराइए।

गले में एक श्लेष्मिक कला है उसका कार्य भी शरीर से विषैला अंश बाहर करने का है। जब शरीर में विषैला अंश बहुत हो जाता है और इस कला को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है तब इस कार्य-भार के कारण उस कला में विकार पैदा होते हैं। फिर इस कला में नाक के पीछे और गले में गाँठ सा कुछ जमने लगता है। इस जमाव या एकत्रीकरण को एडिन्वायड कहते हैं।

जब एडिन्वायड का रोग हो जाता है या टानसिल बढ़ जाते हैं, तब बार-बार जुकाम होने लगता है, खाँसी, श्वास आदि रोग होने लगते हैं। बच्चा पनपता नहीं है। नाक से साँस लेने में कष्ट होता है

और बच्चा मुंह से साँस लेने लगता है।

बहुत से डाक्टर कहते हैं कि आपरेशन करा डालने से ये सब शिकायतें मिट जाती हैं। परन्तु उनका यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है। बहुत से एलोपैथ डाक्टर भी इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि टानसिल्स के कटवा देने से भविष्य में बहुत से रोग होने की सम्भावना रहती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि आपरेशन करने के बाद बच्चों के स्वास्थ्य में प्रत्येक दृष्टि से सुधार दिखाई पड़ने लगता है। परन्तु यह लाभ क्षणिक होता है और वह लाभ जो दिखाई पड़ता है लापता हो जाता है। टानसिल्स कटवाकर निकलवा देने से बहरापन, रोग-निवारक शक्ति का ह्रास, मस्ट्रायड अस्थि का प्रदाह, ब्रोंकाइटिस, खाँसी और स्वास आदि रोग होते ही रहते हैं।

चिकित्सा

एलोपैथ डाक्टरों के पास आपरेशन करने के अलावा और कोई चिकित्सा ही इस रोग की नहीं है। यही कारण है कि किसी डाक्टर से इस रोग के सम्बन्ध में परामर्श लेने पर वह आपरेशन के ही लिए सलाह देता है। प्राकृतिक ढङ्ग से चिकित्सा करने पर यह रोग बड़ी आसानी से मिट जाता है। यह बात अवश्य है कि अनुभवी चिकित्सक ही इस रोग का इलाज कर सकते हैं। स्वयं घर पर इलाज करने में अनेक ठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। परन्तु जहाँ अच्छा चिकित्सक मिलने की सुविधा न हो वहाँ स्वयं ही इलाज करना चाहिए। नीचे हम एक व्यवस्था-पत्र दे रहे हैं इससे बहुत लाभ होता है। साथ ही हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि इस चिकित्सा में तुरन्त ही यदि लाभ न दिखाई पड़े तो बच्चों के माता-पिता को निराश नहीं होना चाहिए। कभी-कभी किसी-किसी को बहुत अधिक दिनों में लाभ दिखाई देता है और काफी लम्बे अरसे तक इलाज करने की आवश्यकता पड़ती है।

केवल उन्हीं लोगों को इस चिकित्सा से लाभ कम होता है जिनका रोग काफी पुराना हो गया रहता है और इतना बढ़ गया है रहता कि इस चिकित्सा का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

आरम्भ में बच्चे को एक मास के लगभग केवल फल पर रखिए। यदि एक मास तक केवल एक ही फल पर रखा जाय तो और अच्छा है। दिन भर में तीन-चार बार ही फल खिलाना चाहिए। यदि कई तरह का फल देना हो तब भी एक बार एक ही तरह का फल देना चाहिए। एक मास बाद बच्चे को रोटी और सब्जी देनी चाहिए। और दिन भर में दो बार फल देना चाहिए। एक बार दूध देना चाहिए। और ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि बच्चे का पेट साफ रहे। आरम्भ में चार-पाँच दिनों तक गरम पानी का एनिमा देना चाहिए। इसके बाद ठंडे पानी का एनिमा महीनों तक रोज भी देने की आवश्यकता पड़ सकती है। गरम पानी से गले का सेंक करना चाहिए। उसमें अदरक का रस या संतरे का रस मिला कर गरारा कराना और अच्छा है।

बच्चे को घर के बाहर अधिक खेलने देना चाहिए। गहरी साँस लेने का अभ्यास डालना चाहिए। ताजी साफ हवा में टहलने और खेलने को प्रोत्साहित करना चाहिए और मौका भी देना चाहिए। बच्चों को नाक से साँस लेने का अभ्यास कराना चाहिए। कभी-कभी भाप से गले के भीतर सेंकने की भी आवश्यकता पड़ती है। प्रति दिन गले पर गीले कपड़े की पट्टी रखनी चाहिए। चीनी और मिठाई बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। अकसर इतने ही से बहुतों को लाभ हो जाता है। बहुतों को महीने १५ दिन के बाद दो तीन बार या आवश्यकतानुसार कई बार फलाहारवाला क्रम दुहराना पड़ता है।

बड़ों को जब यह रोग होता है तब उन्हें उपवास भी कराना पड़ता है और नेती का व्यवहार करना पड़ता है।

हृदय रोग

हृदय रोग के अनेक भेद हैं। इस छोटी सी पुस्तक में उन सबका वर्णन दे सकना सम्भव नहीं है। उन सब भेदों में से कुछ ही छोटे बच्चों को होते हैं। हृदय हमारे शरीर का बहुत आवश्यक अंग है। हृदय धड़कना या ऐसे ही अनेक रोगों को हृदय का रोग कहते हैं। इसलिए इससे सदैव सावधान रहना चाहिए। बच्चों में अकसर ये रोग इसलिए हो जाते हैं कि उनके अनेक रोगों को एलोपैथी दवा देकर दबा दिया जाता है। रोगों को दबाने का जो इलाज किया जाता है, चाहे जिस तरह की चिकित्सा-पद्धति से होता हो, वह गलत है। वही अनेक रोगों का कारण हो जाता है। ऐसपिरिन आदि खाने से भी हृदय कमजोर हो जाता है और अनेक प्रकार के अन्य रोग भी हो जा सकते हैं। हृदय का आकार बढ़ जाना, दर्द होना, धड़कना आदि अनेक रोग हैं जो हृदय में होते हैं। उन सब का वर्णन हमारी पुस्तक "अचूक चिकित्सा विधान" में देखिए।

चिकित्सा

हृदय रोग को दूर करने के लिए एलोपैथ लोग हार्ट टानिक दिया करते हैं। यह गलत तरीके का इलाज है। बच्चों को फल और दूध खाने को दीजिए। रोटी चावल आदि न खिलावें अथवा कम करदें। बच्चे में जीवनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करें। खुली हवा में जहाँ ताजी और साफ हवा आती हो, बच्चों को गहरी साँस लेने को कहिए, खूब खेलने दीजिए। इतना ही बच्चे के रोग को दूर करने के लिए काफी है। यदि और आवश्यकता हो तो उसकी छाती पर नीले शीशे का प्रकाश डालना चाहिए। आधे घंटे तक यह प्रकाश प्रातः ७-८ बजे धूप में डाला जाता है। यदि धूप तेज लगती है तो सिर छाया में रखा जाता है। नीले बोतल का धूप में पकाया पानी आधी-आधी छटाँक की मात्रा में कई बार देने से भी लाभ होता है। यदि रोग बढ़ गया हो तो

अच्छे चिकित्सक से परामर्श लीजिए। अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण ४-६ रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है।

प्लूरिसी

छाती में दोनों ओर दो फेफड़े हैं। ये फेफड़े शरीर के बड़े आवश्यक अङ्ग हैं। इन दोनों फेफड़ों के चारों ओर एक झिल्ली या परदा होता है। उस परदे को अंगरेजी में प्लूरा कहते हैं। उसी झिल्ली में या उसके नीचे पानी इकट्ठा हो जाता है। उस प्लूरा में प्रदाह भी हो जाता है। प्लूरा में पानी जमने या इकट्ठा होने को प्लूरिसी कहते हैं। यह अकसर छोटे बच्चों में निमोनिया के बाद हो जाता है। निमोनिया में जब एलोपैथ गलत ढङ्ग का इलाज करते हैं, रोग को दबाने का प्रयत्न करते हैं तभी अकसर यह रोग होता है। बिना निमोनिया हुए भी यह रोग हो सकता है।

इस रोग में खाँसी आती है, ज्वर रहता है, पसली में दर्द होता है, फेफड़े के नीचे दर्द होता है। जब पानी अधिक हो जाता है तब उसकी आवाज भी सुनी जा सकती है। इस रोग को आयुर्वेद में उरस्तोय—छाती में पानी इकट्ठा होना कहते हैं।

एलोपैथ की राय से इस रोग का सफल इलाज यही है कि आपरेशन कराकर पानी निकलवा दिया जाय। उनके मत से पानी निकालने का अन्य कोई उपाय ही नहीं है। जब तक पानी सूख न जाय या निकल न जाय रोगी को चैन नहीं मिल सकता। लेकिन उचित रीति से इलाज करने पर बिना आपरेशन के ही पानी सूख जाता है।

चिकित्सा

इस रोग में सबसे अधिक आवश्यक यह है कि बच्चे को उपवास कराया जाय और यदि आवश्यक हो तो सन्तरे का रस दिया जाय। पानी देने की आवश्यकता हो तो गरम पानी दिया जाय और उसमें

थोड़ा सा सन्तरे का रस दिया जाय। जब रोग आराम हो जाय तब कुछ दिन फलाहार कराया जाय। फलाहार के सम्बन्ध में काफी अधिक लिखा गया है उसी नियम के अनुसार दिया जाय। प्रतिदिन एनिमा दिया जाय। एनिमा दोनों समय दिया जाना चाहिए। यदि दोनों समय किसी कारण एनिमा न दिया जा सके तो कम से कम एक बार अवश्य देना चाहिए। कपड़ा भिगोकर छाती पर पट्टी रखनी चाहिए। इससे दर्द दूर होने में बहुत सहायता मिलती है।

निमोनिया

निनोनिया दो तरह का होता है। ब्रांको निमोनिया और लोबर निमोमिया। दो बरस तक के बच्चों को अकसर ब्रांको निमोनिया ही होते देखा जाता है। तीन बरस के अन्दर लोबर निमोनिया बच्चों को बहुत कम होता है परन्तु ४ बरस के बाद अकसर यह हुआ करता है। छोटे बच्चों को लोबर निमोनिया उतना घातक नहीं है जितना बड़ी उम्र के लोगों को होता है। श्वास-पथ को अंग्रेजी में ब्रांकिया कहते हैं। इस स्वास-पथ में जब निमोनिया का आक्रमण होता है तब इसे ब्रांको निमोनिया कहते हैं। फेफड़े के लोब में जब निमोमिया का आक्रमण होता है तब उसे लोबर निमोनिया कहते हैं।

निमोनिया में १०२ डिग्री तक ज्वर रहता है,। लगातार खाँसी आती रहती है, साँस बाहर कष्ट से निकलती है इसीलिए यह लम्बी होती है और उसमें एक तरह की पीड़ा मिश्रित आवाज आती है। खाँसी में जो कफ आता है वह लाल रंग का होता है और उसका रंग ईट के चूर्ण का-सा होता है। यह पीड़ा मिश्रित ध्वनि अकसर उस समय शान्त रहती है, नहीं सुनाई पड़ती जब बच्चा चुपचाप पड़ा हो। साँस लेने में नाक के नथुने फूलते हैं यह निमोनिया का खास लक्षण है। इस रोग में अकसर देखा जाता है कि प्यास तो लगती है परन्तु भूख बिलकुल ही नहीं रह जाती। फिर भी एलोपैथ लोग रोगी का बल

कायम रखने के लिए दूध आदि कुछ न कुछ खिलाया करते हैं।

चिकित्सा

निमोनिया में ज्वर रहता ही है। इसलिए ज्वर का ही इलाज इस रोग में होना चाहिए। ज्वर का इलाज यही है कि जबतक ज्वर न चला जाय तबतक उपवास कराया जाय। उपवास के समय केवल सन्तरे का रस दिया जाय। और पानी पीने के लिए इच्छा भर दिया जाय। दूध आदि बन्द कर दिया जाना चाहिए। एनिमा दोनों समय दिया जाय। पानी गरम-गरम दिया जाय। चेस्ट पैक—छाती पर गीली पट्टी—दिन में कई बार दी जाय। गले पर गीली पट्टी एक बार दी जाय। यदि छाती में दर्द हो तो मिट्टी की पट्टी रखी जाय। इतने ही से निमोनिया आराम हो जाता है। जब ज्वर दूर हो जाय तब कुछ दिनों तक फलाहार कराया जाय, इसके बाद साधारण भोजन दिया जाना चाहिए।

निमोनिया अकसर इस कारण होता है कि मीजिल्स और हूपिंग कफ जैसे सामान्य रोगों में गलत ढंग का इलाज करके लोग इस रोग की नींव डाल देते हैं। मीजिल्स के बाद तो अकसर निमोनिया हो ही जाता है। जब ज्वर में भोजन दिया जाता है तभी अनेक प्रकार के उपद्रव उठ खड़े होते हैं। और निमोनिया आदि भी उपद्रव के ही तरह होते हैं। एलोपैथ लोग ज्वर में अन्धाधुंधा भोजन कराते हैं, साबूदाना, दूध, बारली आदि खूब खिलाते हैं। सामान्य ज्ञान रखने वाला रोगी समझता है कि हमारे चिकित्सक बल न घटने देने के लिए दूध आदि दे रहे हैं। वह यह नहीं समझता कि यही भोजन, जो उसे बिना आवश्यकता के दिया जा रहा है, अनेक भावी रोगों की जड़ है जिसे वह इस समय नहीं समझ पा रहा है।

एलोपैथ लोग सिबेजाल या पेनसुलीन आदि का व्यवहार इस रोग में करते हैं। आयुर्वेदीय मत से अनेक औषधियों की व्यवस्था की जा सकती है।

हूपिंग कफ । कुकुर खाँसी

हूपिंग कफ एक प्रकार की सूखी खाँसी है। छोटे बच्चे अकसर इस रोग से पीड़ित होते हैं। चार बरस से लेकर बारह वर्ष तक बच्चों को यह रोग खासतौर से होता है। इसमें खाँसी बड़ी तेजी आती है। कफ इतना सूखा रहता है कि खाँसते-खाँसते बच्चे को कै हो जाती है, चेहरा लाल हो जाता है। यह छूत का रोग है, एक बच्चे से दूसरे बच्चे को लग जाता है। एलोपैथ इस रोग की उत्पति एक प्रकार के कीटाणु से मानते हैं। परन्तु वस्तुतः यह रोग अधिक खिलाने से होता है। मैदा, चीनी, पालिश चावल, और अन्य ऐसी चीजें जिसमें खनिज लवणों का अभाव होता है अधिक मात्रा में खिलाने से इस रोग के होने की अधिक सम्भावना रहती है।

खाँसी का दौरा होता है। ये दौरे ४०-५० बार तक रोज होते हैं। दो सप्ताह तक रोग बढ़ता है, दो सप्ताह तक रुका रहता है, इसके बाद घटना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार ४०-४५ दिनों तक यह रोग रहता है। परन्तु किसी-किसी को ३-३ मास तक यह रोग नहीं छूटता। इस रोग में श्लेष्मिक कला की सरदी हो जाती है। किसी अन्य रोग में शामक चिकित्सा करने से इस रोग के होने की भी सम्भावना रहती है। इस रोग को कुकुर खाँसी कहते हैं।

चिकित्सा

इस रोग में यदि गलत ढंग का इलाज किया जाय तो रोग के छूटने में बहुत विलम्ब लगता है और अनेक उपद्रव भी उठ खड़े होते हैं। इस रोग का सीधा-सादा इलाज यह है कि बच्चे को उपवास कराया जाय और उपवास में केवल सन्तरे का रस दिया जाय। पानी में मिला कर भी सन्तरे का रस दिया जा सकता है। जहाँ सन्तरा न मिले वहाँ किसी पतले रसवाले फल का रस दिया जा सकता है। यदि और कुछ न हो सके तो मुनक्का पानी में उबालकर वही रस देना चाहिए। उप-

वास के दिनों में दूध भूल कर भी नहीं देना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि दूध पतला होते हुए भी पूर्ण भोजन है। दूध देने से उपवास का काम नहीं होता। गरम पानी से एनिमा रोज देना चाहिए गले पर और छाती पर कपड़े की गीली पट्टी रखनी चाहिए। पानी गरम दिया जा सकता है। दो-तीन दिनों में ही रोग की गम्भीरता मिटने लगती है। जब गम्भीरता कम होने लगे तब फल खिलाना आरम्भ करना चाहिए। तीन चार दिन फल खिलाने के बाद बच्चों के लिए उचित भोजन देना चाहिए। एनिमा तब भी देते रहना चाहिए। बच्चे को गहरी साँस लेने की आदत डालनी चाहिए। बच्चा यदि खेलता-कूदता हो तो जहाँ तक सम्भव हो अधिक काल तक मैदान या बाग में रखा जाय। थोड़ी देर नंगे बदन धूप लेना चाहिए।

(१) तीसी का लुआब देने से कफ ढीला हो जाता है।

(२) तीसी, बिहीदाना दोनों को अन्दाज से लेकर थोड़े पानी में भिगो दें। तीन घंटे बाद लुआब निकाल लें। उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर तीन-चार बार देने से कई दिनों में कफ ढीला हो जाता है।

(३) काकड़ासिंगी पुष्करमूल, पीपरि, कायफल, सोंठ, मिर्च जवाइन और मंगरैल सबको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बना ले। इसे चूर्ण की ४-५ रत्ती की मात्रा में १ रत्ती बंसलोचन का चूर्ण मिलाकर शहद से चटाना चाहिए।

(४) गरम पानी पीने को देना लाभदायक है।

अध्याय ५

त्वचा के रोग

एकजीमा—उकवत या अपरस

एकजीमा खुजली का ही एक भेद है। यों तो इसकी कई जातियाँ है परन्तु बच्चों को सब नहीं होती हैं। इसलिए इस पुस्तक में उन सब भेदों का वर्णन करना आवश्यक नहीं है। बच्चों को दो प्रकार का एकजीमा होता है, एक गीला और दूसरा सूखा। सूखे एकजीमा में खुजली तो होती है परन्तु उसमें से मवाद वगैरह नहीं निकलता, केवल रूखी भूसी सी निकलती है। गीले एकजीमा में मवाद भी निकलता है।

छोटे बच्चों को भोजन की गड़बड़ी से ही यह रोग होता है। जब बच्चों को ऐसा भोजन दिया जाता है जो रक्त को दूषित कर देता है तथा जिससे शरीर में एक प्रकार का विष इकट्ठा हो जाता है तभी यह रोग होता है। जो बच्चे केवल अपनी माँ का दूध पीते हों और कुछ भी भोजन न करते हों यदि ऐसे बच्चों को यह रोग हो जाय तो समझना चाहिए कि माता का भोजन ऐसा है जिसमें मांस, मछली और अंण्डे की विशेषता है। रक्त का विकार दूर करनेवाले तत्वों की कमी है और बह भोजन माता के दूध में विष की मात्रा को बढ़ा रहा है और बच्चे में रोग उत्पन्न कर रहा है।

एकजीमा शब्द का अर्थ होता है त्वचा का प्रदाह। इसमें पहले त्वचा का रंग लाल हो जाता है और उसमें दाने निकलते हैं। फिर उन दानों में मवाद पड़ जाता है। एक के बाद दूसरे दाने निकलते रहते हैं और घाव बढ़ता रहता है। कुछ दिन में पपड़ी पड़ती है और उसमें बड़े जोरों की खुजली चलती है और बच्चा खुजला देता है। सब घाव खुजलाने से खुल जाते हैं, घाव ताजा हो जाता है और बढ़ता जाता है।

आयुर्वेद में खुजली को कंडू और एक्जीमा को पामा कहते हैं। वस्तुतः खुजली और पामा दोनों ही चर्मरोग हैं और ऐसे भजनों के प्रभाव स्वरूप ही उत्पन्न होते हैं जो रक्त शुद्ध करने में असमर्थ होते हैं। गीले एकजीमा और खुजली का इलाज भी प्रायः एक ही तरह का होता है।

चिकित्सा

इस रोग का प्रधान इलाज यही है कि शरीर से विष निकाल दिया जाय। रक्त पूर्ण रूप से स्वच्छ और निर्दोष हो जाय। एलोपैथ चिकित्सक रोगों को दबाने का प्रयत्न करते हैं अतः वे इस रोग को भी दबा देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि क्षय, तपेदिक, संग्रहणी आदि अन्य भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और इन रोगों के उत्पन्न होने का दोष चिकित्सक चालाकी से अपने ऊपर न लेकर कीटाणुओं के सर पर मढ़ता है।

सभी तरह के अन्न बन्द कर देना अच्छा होता है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो भी कुछ दिन केवल फल खाकर रहा जाय। फलाहार कम से कम १ सप्ताह अवश्य कराया जाय। उसके बाद रोटी और सब्जी खाने को दी जाय। तरकारियाँ और फल काफी अधिक मात्रा में खाये जायं। मसाले, चीनी, गुड़ और मिठाई की प्रायः सभी चीजें एक दम वन्द कर दी जायं। दोनों समय गरम पानी का एनिमा दिया जाय। धूप स्नान और वायु स्नान किया जाय। यदि मीठा देने की अत्यन्त आवश्यकता हो तो केवल शुद्ध-शहद थोड़ी मात्रा में दी जा सकती है।

स्थानिक उपचार की तौर पर दो बार भाप से उसे धोया जाय। अथवा गरम जल में इपसम साल्ट डाल कर भी धो सकते हैं। नारियल के तेल में नीबू का रस डाल कर धूप में पका लीजिए और वही तेल घाव पर लगाइए। इस उपाय से रोग दूर होने में थोड़ा बिलम्ब अवश्य लगेगा परन्तु शरीर निर्दोष हो जायगा और अन्य कोई रोग उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहेगी।

गंधक का लोशन या गंधक का मलहम लगाने से घाव जल्द सूखते हैं परन्तु नेचर क्योर के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी चीज घाव पर नहीं लगाना चाहिए। ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिए जिसमें बच्चा घाव को खुजलाने न पावे। खुजलाने से घाव सूखने में बहुत बिलम्ब हो जाता है। डाक्टरों का विचार है कि इस रोग पर तेल या इसी तरह की कोई चीज नहीं लगानी चाहिए क्योंकि तेल लगाने से रोग दूर नहीं होता। आयुर्वेद में अनेक तेल ऐसे हैं जो औषधियों से तैयार किये जाते हैं और उनसे एकजीमा में लाभ होता है। महामरिचादि तैल, महा सिंदूरादि तैल अच्छे लाभदायक हैं। कासीसादि मलहम बहुत लाभकारी है। इस का नुस्खा अचूक चिकित्सा-विधान में दिया गया है।

दाद--रिंगवर्म

दाद दोषज व्याधि उतनी नहीं है जितनी क्रिमिज। दाद में एक प्रकार के क्रिमि होते हैं। जगह लाल पड़ जाती है उनमें खुजली होती है और छोटे-छोटे दाने उभड़ते हैं और दानों का घेरा अंगूठी की तरह गोल होता है। इसी कारण उसे रिंगवर्म कहते हैं। अंग्रेजी में अंगूठी को रिंग कहते हैं।

दाद यों तो शरीर के किसी भी अंग में हो सकती है परन्तु पोतों पर, जाँघ के जोड़ों के पास, पट्ठों में और सिर पर अकसर होती है। एक दाद ऐसी होती है कि बरसात के दिनों में होती है, और बरसात के बाद उसका जोर कम हो जाता है।

दाद क्रिमि से उत्पन्न होने वाला रोग अवश्य है परन्तु यह रोग उन्हीं लोगों को होता है जिनमें जीवनी-शक्ति कम होती है, जिनका स्वास्थ्य दुर्बल होता है। जिन्होंने कुत्सित भोजनों के द्वारा रोग निवारक शक्ति घटा ली है उन्हींको यह रोग अकसर होता है। इस रोग का इलाज यही होना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य उन्नत हो।

चिकित्सा

जिस ढङ्ग का इलाज एकजीमा के इलाज में बताया गया है उसी तरह का इलाज दाद का भी होना चाहिए। आजकल ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दाद का सम्बन्ध किसी भी हालत में भोजन से मानने को तैयार हों। परन्तु सत्यता यह है कि भोजन के ऊपर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर है। इसलिए शरीर में कहीं भी कोई रोग हो उसके लिए जिम्मेदार हमारा भोजन ही है।

भोजन सुधार, दोनों समय एनिमा का प्रयोग, सूर्य स्नान और वायु स्नान, नमक जल का स्नान, प्रातःकाल टहलना, व्यायाम आदि से स्वास्थ्य में सुधार होता है। और ये ही उपाय दाद को भी दूर करते हैं।

दाद के स्थान पर सूर्य की किरणें लगने देने से बड़ा लाभ होता है। दाद पर नीबू का रस लगाने से भी लाभ होता है परन्तु नीबू लगता है। नारियल के तेल में कपूर मिलाकर लगाने से दाद में बहुत लाभ होता है। दो तीन सप्ताह में दाद आराम हो जाता है। एसिड क्राइसोफनिक से तैयार किया हुआ मलहम भी दाद को आराम करता है। सुहागे की खील का मलहम भी दाद को आराम करता है। कासीसादि मलहम से दाद में भी लाभ होता है।

अध्याय ६

स्नायु सम्बन्धी रोग

कनवलशन—ऐंठन

बच्चों को ऐठंन का रोग कई कारणों से होता है। अकसर ऐसे लोगों के बच्चों को कनवलशन हुआ करता है जिनका मस्तिष्क कमजोर होता है, जिनको हिस्टीरिया का रोग होता है अथवा जिनके वंश के लोग शराब पीते हैं अथवा जिनके परिवार में सिफलिस या गर्मी का रोग हुआ रहता है।

मृगी, गुर्दे का रोग और मस्तिष्क रोग के कारण बच्चों को ऐठंन या फिट का रोग हुआ करता है कभी-कभी छूतदार रोगों के आरम्भिक रूप के कारण भी ऐंठन का रोग हुआ करता है। अजीर्ण के कारण अथवा क्रिमियों के कारण आँतों में ऐंठन होने के कारण भी ऐंठन का रोग होता है। कान वहने के कारण तथा गले के घाव के कारण अथवा दाँत निकलने के समय भी ऐंठन का दौरा हो सकता है।

ऐंठन का लक्षण यह है कि शरीर की मांसपेशियों में एक प्रकार का तनाव और फिर फैलाव दौरे के रूप में होता है और जब मांसपेशियों में संकोच या सिकुडन होती है बच्चा जोरों से मुट्ठी बाँध कर दाँतों को बन्द कर लेता है और चेहरा नीला पड़ जाता है। कभी-कभी धनुष टंकार की तरह भी हो जाता है। बच्चों में यह रोग अकसर हुआ करता है। किसी चतुर चिकित्सक से परा मर्श लेना अच्छा है।

चिकित्सा

गरम जल का स्नान इस रोग के लिए विशेष उपकारी है। लम्बे टप में गरम जल भर कर—अवश्य जल इतना सामान्य गरम हो कि बच्चे को कष्ट न मिले बल्कि सुख मिले—उसमें बच्चे को बैठा या लेटा

देना चाहिए। और कई मिनट तक लेटने देना अच्छा होता है। चूंकि ऐंठन वायु के कारण होती है इसलिए गरम जल में लेटने से मांस पेशियों का संकोच और तनाव रुक जाता है, स्नायुओं में बल आ जाता है। जब रोग की दशा शान्त हो जाय तब गरम जल का स्नान बन्द कर देना चाहिए और गरम वस्त्र पहनाकर सामान्य गरम रखने की चेष्टा करनी चाहिए। और गरम जल का एनिमा दे कर पेट साफ कर देना चाहिए। कम से कम चौबीस घंटे तक कुछ भी खाने को न दिया जाय। दूध भी न मिले तो अच्छा है। हां, आवश्यकतानुसार गरम-गरम पानी पीने को देना चाहिए। और पूरा आराम देना चाहिए। उसे लेटाये रखना चाहिए।

एलोपैथिक चिकित्सक मांसपेशियों को सुन्न कर देने के लिए कभी-कभी इंजेकशन आदि का प्रयोग करते हैं। हमारी राय में इस प्रकार का कोई शामक उपाय करना लाभदायक नहीं है।

चौबीस घंटे बाद फलों का रस और थोड़ा दूध देना चाहिए और तीन दिनों तक यही पथ्य रखना चाहिए। और गरम पानी का एनिमा रोज देना चाहिए। फिर फलों के रस के बाद फल देना चाहिए और एक सप्ताह फल और दूध पर रखने के बाद यदि बच्चा अन्न खाने वाला हो तो रोटी सब्जी धीरे-धीरे आरम्भ करना चाहिए। और इस प्रकार उचित भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए कि फिर दोष शरीर में एकत्र न होने पावे।

यदि यह रोग किसी भयानक रोग के पूर्व रूप के रूप में प्रगट हुआ हो तो प्रधान रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिए। परन्तु ऐसी चिकित्सा कभी भी नहीं करनी चाहिए जिसमें रोग का कारण दब जाय।

इनफैन्टाइल परालिसिस (बच्चों का लकवा)

बच्चों का यह रोग बड़ा गम्भीर है। यह रोग अकसर छः वर्ष की अवस्था तक होता है। एलोपैथ चिकित्सकों का मत है कि एक

प्रकार के कीटाणु के मुख और नाक द्वारा प्रवेश पाने से यह रोग होता है। कभी-कभी यह रोग संक्रामक रूप में भी फैलता है। कहा जाता है कि रीढ़ की हड्डी में प्रदाह होने के कारण यह रोग होता है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि एलोपैथों की कीटाणुओं द्वारा रोग फैलाने की बात वैसी ही निराधार है जैसी अन्य रोगों के सम्बन्ध में। वस्तुतः यह रोग उन्हीं बच्चों को होता है जिनको उसना और उबला हुआ भोजन दिया जाता है जिसमें खनिज लवण और विटामिनों का अभाव रहता है। इस अभाव के कारण शरीर की रोग-निवारक शक्ति क्षीण हो जाती है और रोग का आक्रमण हो जाता है। कीटाणुओं का प्रभाव हमारे शरीर पर तभी होता है जब उनके जीने और बढ़ने के लिए हमारा शरीर अनुकूल पड़ता है। यह तभी सम्भव है जब शरीर की रोग-निवारक शक्ति घट जाती है। जब-तक रोग-निवारक शक्ति रहती है तबतक कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अतः रोग का कारण हमारा दूषित भोजन है जिसके कारण रोग-निवारक शक्ति घटती है।

प्रयोग करके यह देख लिया गया है कि कबूतर, छोटी चूहिया, चूहे आदि को जब मैदा की रोटी और पालिश चावल और ऐसे ही भोजन जिनमें खनिज लवण तथा विटामिनों का अभाव होता है कई सप्ताह तक खिलाया जाता है तब उनमें इनफैन्टाइल पेरालिसिस के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। और जब उनको बिना छना गेहूँ के आटे की रोटी, बिना पालिश किये चावल का भात तथा ऐसे ही प्राकृतिक अवस्था के पदार्थ दिये जाते हैं तब बड़ी तेजी से रोग के लक्षण गायब हो जाते हैं और वे स्वस्थ हो जाते हैं।

हमारी रीढ़ की हड्डी के भीतर से स्नायु का समूह जाता है। वह मस्तिष्क से निकल कर रीढ़ की हड्डी द्वारा नीचे उतरता है और उन्हीं की शाखाएं हमारे पाँव और हाथों में जाती हैं और उनकी क्रियाओं और मांसपेशियों को नियंत्रित करती हैं। रीढ़ के उन्हीं स्नायु-केंद्रों में,

जो हाथ-पाँव की मांसपेशियों और गतियों के नियामक हैं, लोच और शक्ति के अभाव के कारण यह रोग प्रायः होता है। इसीको आयुर्वेद की भाषा में वात रोग कहते हैं क्योंकि स्नायुओं का विकार वात विकार कहलाता है।

जब यह रोग होने को होता है तब हलका ज्वर, हाथ-पाँथ में दर्द और सर्दी मालूम होती है अकसर इस लक्षण को भूल से चिकित्सक इनफ़्लुएंजा समझ लेता है। फिर थोड़े ही दिनों बाद देखा जाता है कि शरीर के किसी अङ्ग में लकवा मार गया है। वह रोगी के उठाये या हिलाये उठता या हिलता ही नहीं। अकसर एक ही हाथ या एक पाँव में यह रोग होता है परन्तु कभी-कभी एक हाथ और एक पाँव में भी यह हो जाता है और दोनों पाँव या दोनों हाथ अथवा दोनों पाँव और दोनों हाथ में भी यह रोग हो सकता है। कुछ दिनों बाद रोग धीरे-धीरे मिट जाता है। परन्तु ऐसा सम्भव है कि कुछ मांसपेशियाँ निर्जीव ही रह जायं, उनमें चेतना न आवे और धीरे-धीरे वे क्षीण होने लगें। इसका फल यह होता है कि वह अङ्ग निष्प्राण तो रहता ही है हलका और पतला भी पड़ जाता है। अकसर बचपन का परालिसिस आराम हो जाता है परन्तु कुछ बच्चों में यह स्थाई रूप से रह ही जाता है। परालिसिस को हिन्दी में लकवा कहते हैं।

चिकित्सा

एलोपैथ चिकित्सकों की राय यह होती है कि यह छूतदार रोग है अतः वे छूत के रोग के समान ही इसका इलाज भी करते हैं। बच्चे को अन्य बच्चों से अलग रखना अच्छा है। दर्द को कम करने के लिए आक्रान्त अङ्ग की मांसपेशियों को पूर्ण विश्राम मिलना चाहिए। यदि स्प्लिन्ट लगा दिया जाय तो अच्छा है। आक्रान्त स्थान पर सूखा सेंक करना या बालू का सेंक देना चाहिए। बिजली की चिकित्सा से इसमें लाभ होता है।

जब तक ज्वर रहे बच्चे को कुछ भी खाने को न दिया जाय उप-

वास कराया जाय और बच्चे को सन्तरे का रस और गरम जल दिया जाय। सन्तरे का रस और गरम जल उतना दिया जा सकता है जितना बच्चा चाहे। इन उपवास के दिनों में गरम जल का एनिमा देना चाहिए। जब ज्वर शान्त हो जाय जीभ साफ हो जाय, तब बच्चे को केवल फल खाने को देना चाहिए। जब रोग दूर हो जाय केवल दुर्बलता रह जाय तब धीरे-धीरे रोटी सब्जी पर आना चाहिए। और फल, तरकारियाँ, कच्ची खाई जानेवाली तरकारियाँ, सलाद, ताजा कच्चा दूध और मक्खन आदि भरपूर खिलाना चाहिए जिसमें बच्चे में जो खनिज लवण और विटामिनों का अभाव है वह दूर हो जाय। चीनी, मिठाई, मुरब्बे, मैदा, पालिश चावल आदि बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। यदि बच्चा कुछ मीठा खाना ही चाहे तो उसे खजूर, मुनक्के, किशमिश, अंजीर और शहद आदि देना चाहिए। अच्छे प्राकृतिक चिकित्सक द्वारा रीढ़ की हड्डियों की हस्त चिकित्सा करानी चाहिए। आक्रान्त अङ्ग की मालिश इस रोग की सर्वोत्तम औषधि है। मालिश तेल से या सूखी दोनों तरह से होती है। मालिश चिकित्सा का एक विशेष अङ्ग है। मालिश के विशेषज्ञ द्वारा यह कार्य कराना अधिक अच्छा है। हलकी भाप से आक्रान्त स्थान को सेंकने से भी विकार निकल जाता है और रोग दूर हो जाता है।

मेनिनजाइटिस

गर्दन और मस्तिष्क में मस्तिष्क और रीढ़ों के भीतर से जाने वाली स्नायु-रज्जु को ढकनेवाली झिल्ली का नाम मेनिनजाइज है। इस झिल्ली या कला के प्रदाह को मेनिनजाइटिस कहते हैं। इसको देशी भाषा में गर्दन तोड़ बुखार कहते हैं। यह तीव्र रोग या तरुण रोग है। बच्चों को होनेवाले जितने भी तीव्र रोग हैं उनमें सब में भयानक यह रोग है।

इसके कारणों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि छूत के रोग के

कारण या सिर में चोट लगने के कारण अथवा कान की हड्डियों के प्रदाह के कारण, जो फैलकर या बढ़कर सेरिब्रो स्पाइनल कार्ड तक चला जाता है, यह रोग बच्चों में हो सकता है। निमोनिया या रक्त के विषाक्त हो जाने से भी यह रोग हो सकता है। सिर में चोट लग जाने या सिर के बल गिर जाने के कारण भी मेनिनजाइज आघात लग जाने से यह रोग हो जाता है

बच्चों के रोगों को शामक चिकित्सा करके उनके बिष को दबाना इस रोग का प्रधान कारण है। गलत तरीके के भोजन से शरीर में दोषों के बिगड़ेने और एकत्र होने से इस रोग की नींव पड़ती है और सामान्य सा बाहरी कारण उपस्थित होने से रोग का उभाड़ हो जाता है।

इस रोग में नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, बड़ा तेज ज्वर रहता है और भयानक सिर दर्द होता है। और ऐंठन या कनवलशन होता है। गर्दन के पीछे और रीढ के अन्दर तेज पीड़ा होती है, पीठ में तनाव हो जाता है क्योंकि इसकी मांसपेशियाँ तन जाती हैं और सख्त हो जाती हैं और सिर पीछे की ओर खिंच जाता है और तन जाता है। आरम्भ में बेचैनी बहुत रहती है और शोर या शब्द बर्दाश्त नहीं होता और रोशनी की ओर ताकने में कष्ट होता है। बच्चा प्रलाप करने लगता है और कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा अचेत पड़ा रहता है। कभी-कभी भयानक वमन होती है। किसी-किसी बच्चे के मुंह पर और बदन में भी दाग उत्पन्न हो जाते हैं और ऐसे ज्वर को दाग दार ज्वर कहते हैं। पेडू की दशा या तो साधारण रहती है या वह पीछे सिकुड़ जाता है और कब्ज रहने लगता है।

चिकित्सा

जैसे और ज्वरों में चिकित्सा होती है वैसे इस रोग में भी चिकित्सा करनी चाहिए। उपवास प्रधान चिकित्सा है। उपवास के दिनों में सन्तरे का रस देना चाहिए। गरम पानी का एनिमा देना चाहिए और गरदन पर मिट्टी की मोटी पट्टी रखनी चाहिए। सारे शरीर की या

सीने और पीठ पर कपड़े की ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। इसके बाद फलों पर कुछ दिन रखना चाहिए। तब बुद्धिमानी के साथ उचित भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। अच्छा यह होता है कि इस प्रकार के रोगी का इलाज चतुर प्राकृतिक चिकित्सक की देख-रेख में हो। बच्चे को ऐसे कमरे में रखा जायं जहाँ प्रकाश की चकाचौंध कष्ट न दे।

डाक्टर लोग कमर पर रीढ के पास काटकर सेरिब्रो स्पाइनल तरल को निकाल देते हैं इससे सिर दर्द आराम हो जाता है और गर्दन का तनाव कम हो जाता है। सुन्न करनेवाली औषधियों का प्रयोग कर के मांसपेशियों की ऐंठन कम करते हैं और कभी-कभी इस रोग के रक्त रस (सीरम) द्वारा चिकित्सा करते हैं।

एलोपैथ चिकित्सकों के इलाज द्वारा अकसर रोगी मर जाते हैं। यदि आराम भी होते हैं तो बच्चे कमजोर और रोगी हो जाते हैं। कभी-कभी बच्चे अन्धे और बहरे हो जाते हैं और लकवा भी मार जाता है।

ट्यूबरकुलर मेनिनजाइटिस

क्षय जन्य मेनिनजाइटिस बच्चों को अकसर हुआ करता है। यद्यपि यह रोग बड़ों को भी हो सकता है। इस रोग में क्षय का लक्षण शरीर के किसी एक अङ्ग में भी प्रगट हो सकता है और सारे शरीर का भी क्षय हो सकता है। कुछ दिनों तक बच्चे का स्वास्थ्य बहुत दुर्बल रहता है और तब यह रोग प्रगट होता है। वमन, ऐंठन या जोरों का सिर दर्द होता है। इसके बाद गर्दन की मांसपेशियाँ तन जाती हैं और सख्त हो जाती हैं। सिर पीछे की ओर खिंच जाता है। इस रोग से बच्चे अकसर नहीं बचते, मर जाते हैं।

चिकित्सा

इस रोग में चिकित्सा प्रायः निष्फल जाती है। यदि बच्चे को प्राकृतिक भोजन पर रखा जाय तो जान बचने की आशा कुछ की जा

सकती है, ताजा दूध, ताजी हवा और फल तरकारियों का प्रचुर प्रयोग ही लाभदायक होता है। शेष चिकित्सा उसी प्रकार की जानी चाहिए जैसी मेनिनजाइटिस की चिकित्सा में लिखा है। अच्छा यह होगा कि किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श लिया जाय।

विटस डांस (कोरिया)

इस रोग को सेंट वाइटस डांस भी कहते हैं क्योंकि इसका आविष्कार उन्होंने ही किया था। यह रोग हमारे देश में बहुत कम होता है। इसकी गणना आयुर्वेद के वात रोग में की जानी चाहिए क्योंकि यह स्नायुओं के कमजोर होने के कारण ही होता है। डाक्टर लोग भी मानते हैं कि इस रोग के मूल में रियूमेटिज्म अवश्य होता है। इस रोग में शरीर की कई मांसपेशियों में या मांसपेशियों के समूह में रोगी की बिना इच्छा के ही स्वयं कम्पन या हरकतें होती हैं और रोगी की स्नायुएं उसको रोक नहीं पातीं। मांसपेशियों का यह कम्पन अकसर हाथ और मुंह में ही होता है। इस कम्पन को। रोकने की चेष्टा बेकार होती है, रोकने की जितनी ही कोशिश की जाती है कम्पन उतना ही बढ़ जाता है। अकसर ऐसा होता है कि बच्चों के हाथ से चीजें गिर जाती हैं या चेहरा टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। उत्तेजना, थकावट या कठिनाइयों में फंसने के कारण मानसिक परेशानियों से इस रोग की अकसर उत्पत्ति होती है। बच्चा इस रोग से आक्रान्त होने पर चिड़चिड़ा हो जाता है और स्वभाव बदल जाता है। इस रोग में स्वर में अन्तर पड़ जाता है, स्वर स्पष्ट नहीं निकलते और जीभ मोटी हो जाती है।

कभी-कभी इस रोग में रियूमेटिज्म के लक्षण भी प्रगट होते हैं। जोड़ों में सूजन और दर्द प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। कुछ दिनों के बाद स्नायुओं पर अधिकार ही नहीं रह जाता। बहुत बड़ी भीड़ में रहना, नींद न आना, लगातार शोर-गुल के बीच रहना, मानसिक उत्तेजना,

अत्यधिक कार्य इन कारणों से यह रोग अकसर हो जाता है। सोते समय इस रोग का आक्रमण प्रायः नहीं होता।

इस रोग के कारण के सम्बन्ध में बड़ी गलत धारणा चिकित्सकों में है। हमारी राय में माता-पिता से भी इस रोग का सम्बन्ध होना चाहिए। जिन माता-पिता का भोजन दूषित होता है, धातु-विकार होता है, स्नायु दौर्बल्य होता है उनके बच्चों को यह रोग होना चाहिए क्योंकि रोग का विष और स्नायु दौर्बल्य इनको विरासत में ही मिलती है। गलत भोजन, मांस, मछली, मैदा, चीनी, गुड़ आदि का अधिक व्यवहार करने से शरीर में एक प्रकार का विष इकट्ठा होता है वही विष रक्त में मिलकर रोग उत्पन्न होने का कारण बन जाता है।

चिकित्सा

यदि बच्चा स्कूल जाता हो तो स्कूल से हटा लेना चाहिए और उसे पूरा आराम देना चाहिए। किसी प्रकार की मानसिक चिन्ता पास न आने देना चाहिए। रोगी की चारपाई के चारों ओर नरम बिछावन या पुआल बिछा देना चाहिए जिसमें यदि रात को रोगी रोग के दौरे के समय गिरे तो चोट न लगे। एलोपैथ चिकित्सक इस रोग में संखिया देने की व्यवस्था करते हैं। शरीर में पहले से ही विष रहता है उसमें और विष प्रयोग करके उसकी मात्रा को बढ़ाना बड़ी नादानी है।

नीचे लिखी व्यवस्था से रोग जल्द आराम होता है। गरम पानी का एनिमा दिया जाय। एक सप्ताह या इससे भी कुछ अधिक दिनों तक केवल फलाहार कराया जाय, फिर दूध और फल की व्यवस्था की जाय। १५ दिन तक दूध और फल पर रखने के बाद धीरे-धीरे रोटी सब्जी पर आना चाहिए। किसी-किसी रोगी के लिए रीढ़ की हस्त-चिकित्सा करने की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

रोग के अच्छा हो जाने के बाद भी कुछ दिनों तक ऐसे कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उत्तेजना होती और पढ़ना-लिखना, गाना-बजाना आदि बन्द रखना चाहिए।

अध्याय ७

अपूर्ण पोषण के रोग

रिकेट्स—अस्थिदौर्बल्य

अस्थि दुर्बलता का रोग अकसर छोटे बच्चों को होता है। और ५ वर्ष की अवस्था तक बहुत अधिक संख्या में होता है। परन्तु ७ वर्ष की अवस्था से लेकर १८ वर्ष तक के नवजवान बच्चों को भी हो सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि इस अवस्था में यह रोग बहुत ही कम लोगों को होता है।

भारतवर्ष में यह रोग प्राचीनकाल में बहुत कम होता था अथवा बिककुल ही नहीं होता था। क्योंकि यदि यह रोग इस देश में प्रचलित होता तो इसके बारे में हमारे शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख मिलता। काश्यप संहिता में फक्क रोग का नाम बालव्याधियों में मिलता है। फक्क रोग का लक्षण बच्चों के सूखा रोग से मिलता है। रिकेट या अस्थिदौर्बल्य या अस्थि-क्षय में कुछ विशेष लक्षण भी मिलते हैं। भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति ऐसी है, तथा यहाँ प्राचीनकाल में खाने-पीने की चीजों की इतनी इफरात रहती थी कि हर व्यक्ति, हर बच्चे और बूढ़े को पूर्ण पौष्टिक भोजन मिल जाता था। कोई भी किसी भी अर्थ में भूखा नहीं रहता था। रहने-सहने का ढंग प्राकृतिक था, खूब रोशनी, खूब धूप, विपुल स्वच्छ वायु प्रायः सब को प्राप्त थे अतः ऐसे स्वास्थ्य-पूर्ण वातावरण में अस्थि-क्षय या अस्थिदौर्बल्य जैसा रोग उत्पन्न नहीं हो सकता था।

एलोपैथिक चिकित्सक भी इस बात को अब मानने लगे हैं कि दूषित भोजन के कारण जिसमें पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्व नहीं होते और बिटामिन डी तथा कैलशियम और फासफोरस की कमी

रहती है यह रोग उत्पन्न होता है। योरुप, अमेरिका आदि देशों में भारत-वर्ष की अपेक्षा अब भी यह रोग अधिक होता है क्योंकि इस सभ्यता के युग में उन लोगों को सूर्य का प्रकाश और धूप तथा उन्मुक्त स्वच्छ वायु नहीं मिल पाती। विटामिन और खनिज-लवण रहित भोजन तो वहाँ अधिकांश लोग करते ही हैं। यही वजह है कि उन देशों में यह रोग अधिक होता है।

इस रोग में अस्थियाँ विकृत हो जाती हैं, कमजोर हो जाती हैं और रोगी में रोग निवारक शक्ति का ह्रास हो जाता है।

१६१४ के युद्ध के बाद योरुप की भोजन-व्यवस्था बहुत बिगड़ गई थी लोग किसी प्रकार जीवन चलाने मात्र के लिए भोजन पाते थे। पौष्टिक भोजन का एक तरह से सर्वसाधारण के लिए अभाव हो गया था। भोजन में विटामिनों और खनिज लवणों का अभाव तो था ही, यह रोग बड़े जोरों से फैला। इस रोग के निराकरण के लिए अनुसंधान-कार्य आरम्भ हुए। जेनेवा में इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुसंधान किया गया। प्रोफेसर एडवर्ड मेलान बी ने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि वसा में घुलनशील विटामिन डी की भोजन में कमी होने से रिकेट या अस्थिदौर्बल्य का रोग होता है। सूर्य की रोशनी अपनी अल्ट्रावायलेट किरणों के कारण शरीर के अन्दर भी इस विटामिन को तैयार करती है अतः जिन बच्चों के शरीर पर सूर्य की रोशनी पर्याप्त मात्रा में नहीं लगती है उनको तथा गरीबों को यह रोग विशेष रूप से होता है। भोजन में वसा का अभाव भी इस रोग के उत्पन्न होने का प्रधान कारण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य के प्रकाश का अभाव या कमी, भोजन में केल-शियम, फासफोरस का अभाव, विटामिन सी और डी की न्यूनता तथा भोजन में वसा की कमी ये सभी मिलकर बच्चों में रिकेट या अस्थिदौर्बल्य का रोग उत्पन्न करते हैं।

अन्न जो हम बच्चों को खिलाते हैं वे भी रिकेट पैदा कर देते हैं

क्योंकि इनकी क्रिया विटामिन डी के विपरीत होती है और विटामिन डी अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता। दूसरे इन अन्नों से शरीर इतनी तेजी से बढ़ता है कि उतनी तेजी से हड्डियों को उचित मात्रा में कैलशियम नहीं मिल पाता कि वे उसी अनुपात में दृढ और पुष्ट होकर बढ़ सकें। इसके अलावा विटामिन डी वाले भोजन बच्चे अधिकतर पसन्द नहीं करते और ऐसा ही भोजन ग्रहण करते हैं जिसमें यह विटामिन कम होता है।

विटामिन डी जिन पदार्थों में होता है वे किंचित मंहगे हैं और दूसरे उनकी ओर लोगों की रुचि भी प्रायः कम रहती है। दूध, दही, घी, मक्खन, पनीर, सारडिन मछली, स्प्राट नामक छोटी मछली में तथा हरे और पीले रंगवाले पत्तेदार शाक और तरकारियों में विशेष रूप से यह पाया जाता है। ये खाने-पीने के सामान आजकल बहुत मंहगे हैं और साधारण कमाई का आदमी आसानी से इनका प्रबन्ध अपने लिए नहीं कर सकता। सन्तरे और नीबू में विटामिन सी होता है। विटामिन सी बिटामिन डी की कमी को बहुत कुछ पूरा करता है।

रिकेट या अस्थि दौर्बल्य के लक्षण

इस रोग के बहुत ही आवश्यक लक्षण ये हैं कि रात को बच्चे को नींद नहीं आती। सिर में बहुत अधिक पसीना आता है। यहाँ तक पसीना आता है कि तकिया भीग जा सकती है । यदि बच्चा चलता हो और यह रोग हो जाय तो उसका चलना रुक जाता है अर्थात् वह चल नहीं पाता और उसकी टाँगें धनुष की तरह टेढ़ी हो जाती हैं घुटने चलते समय लड़ने लगते हैं। यदि बच्चा चलता न हो और यह रोग हो जाय तो चलने की सामर्थ्य उसमें देर में होती है। बकैयाँ या घुटनों के बल चलनेवाले बच्चों की बांहें टेढ़ी हो जाती हैं। छः मास के बच्चे की हड्डी में यह परिवर्तन हो जाता है कि हड्डियों के

अन्त में गाँठें पड़ जाती हैं, बच्चा कमजोर हो जाता है। उसे सर्दी लगने का बहुत डर रहता है और उसे सरदी जल्द लगती भी है। उसे ब्रोंकाइटिस, या ब्रांको निमोनिया जल्द हो जाता है, खाँसी आती है और बड़े कष्ट से कफ ढीला होकर निकल पाता है।

रिकेट अकेली हड्डियों का रोग नहीं है बल्कि इसमें मांसपेशियाँ स्नायुएं, और शारीरिक यन्त्र भी हड्डियों के साथ-साथ विकृत हो जाते हैं। बच्चे को कब्ज रहने लगता है और दाँत देर में निकलते हैं अथवा विकृत और कमजोर दाँत निकलते हैं। सिर लम्बा और चौकोर हो जाता है। छाती पर दो प्रकार की गहरी धारियाँ प्रगट हो जाती हैं। एक ऊपर से नीचे जाती है और दूसरी शरीर के चारो ओर घूमती है। और छाती कबूतर की तरह हो जाती है। इसका कारण यही है कि पसली के दोनों छोरों पर हड्डी में एक गाँठ सी पड़ जाती है गाँठ पड़ने पर हड्डियाँ उठ आती हैं और गाँठदार धारियाँ प्रगट हो जाती हैं। इन्हीं गाँठों के कारण छाती का आकार भी बिगड़ जाता है। सबसे पहला लक्षण यह प्रगट होता है कि हाथ की कलाई और टखने के जोंड़ों पर सूजन प्रगट हो जाती है। वह सूजन भी हड्डी के अन्त में गाँठ सी पड़ने के कारण ही दिखाई पड़ती है।

स्नायुओं के दुर्बल हो जाने के कारण बच्चा बहुत चिड़चिड़ा हो पाठक यह जाता है। नीचे हम फक्क रोग के निदान और लक्षण दे रहे हैं जिससे समझ सकें कि वैज्ञानिकों की खोज किसी भी अर्थ में कश्यप संहिता से आगे नहीं है।

फक्क रोग

भगवान कश्यप ने कश्यप संहिता में जीवक को उपदेश दिया है कि यदि बालक एक साल का हो जाय और पाँवों के बल न चले तो समझना चाहिए कि उसे फक्क रोग हो गया है। माता का दूध जब कफ के कारण विकृत हो जाता है तब उस दूध को ही फक्क दूध कहते हैं। कफ

से दूषित होने के कारण बच्चे के रस रक्त आदि धातुओं को बहाने वाली नसें बन्द हो जाती हैं और बच्चा दुबला और बहुत सी व्याधियों से पीड़ित हो जाता है।

भाव यह है कि स्रोतों के बन्द हो जाने से पोषक तत्व नहीं पहुँच पाता। यही बात पश्चिमी वैज्ञानिक कहते हैं कि एक साल का बच्चा न चले तो समझना चाहिए कि कैलशियम की कमी से रिकेट नामक रोग हो गया है। पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि भोजन में कैलशियम की कमी से यह रोग होता है। महर्षि कश्यप और ऊंची बात बताते हैं। उनका कहना है कि कफकारी दूध के पीने से स्रोतों के बन्द हो जाने से भीतरी ग्लैंड्स भी ठीक कार्य सम्पादन नहीं कर पाते और यदि दूध में कैलशियम हुआ भी तो उसका सात्मीकरण (एसिमिलेशन) नहीं होता और बच्चा क्षीण हो जाता है।

बहरापन और गूंगेपन की उत्पत्ति भी फक्क रोग के कारण ही महर्षि मानते हैं। महर्षि कहते हैं कि जीभ के दो कार्य हैं शब्दोच्चारण और रस ग्रहण। जिह्वामूल में जब विकार पैदा हो जाता है तब शब्दोच्चारण नहीं हो पाता और शब्दोच्चारण का मूल है कान। शब्दोच्चारण शक्ति के नाश होने से कान की भी शक्ति नष्ट हो जाती है और बच्चा गूंगा और बहरा हो जाता है।

फक्क रोग तीन प्रकार का होता है—दूध के दोष से, गर्भ के दोष और व्याधि के कारण। माता के गर्भ में विकार आने से ठीक-ठीक पोषण न प्राप्त होने से भी फक्क रोग हो जाता है तथा गर्भिणी स्त्री के दूध पीने के कारण भी यह रोग होता है। और गर्भावस्था में यदि माता को पौष्टिक भोजन न मिले, यदि ऐसा भोजन मिले जिसमें दूध फल घी, मक्खन ताजी तरकारियाँ आदि का अभाव हो तो माता में ह विटामिनों और खनिज लवणों की कमी हो जाती है और इनके अभाव से बच्चा पुष्ट नहीं हो पाता, तथा उत्पन्न होने पर भी इस कमी से उसकी वृद्धि ठीक-ठीक नहीं होती। और अनेक कारणों से ज्वर आदि

रोगों के कारण भी यह रोग हो जाता है।

इसके लक्षण ये हैं—बालक अत्यन्त सूख जाता है, और बालक के बल, मांस और कान्ति क्षीण हो जाती है चूतड़, बाहु और जंघा सूख जाते हैं इनमें मांस नहीं रह जाता है, पेट निकल आता है, सिर बड़ा और लम्बा हो जाता है, चेहरा सूख जाता है और चेहरे की हड्डियाँ बाहर निकल आती हैं, मुंह डरावना हो जाता है, आँखें पीली पड़ जाती हैं केवल अस्थि-पंजर या कंकाल मात्र शेष रह जाता है। ओठ और शरीर अत्यन्त मलीन और दुखी दिखाई पड़ते हैं और पाखाना पेशाब नित्य ही होता है। उसका शरीर और ओट चेष्टा-हीन हो जाते हैं यदि बालक पाँव के बल या बकैयाँ चलता रहता है तो वह भी कमजोरी के कारण बन्द हो जाता है। मक्खियाँ और अन्य कीड़े उसके पास बहुत आते हैं और ऐसे रोगी की मृत्यु समीप आ गई रहती है। बच्चे के रोंगटे खड़े हो जाते हैं या रोंगटे जड़ हो जाते हैं, रोगी के शरीर से दुर्गन्ध आती है, रोगी मलिन रहता है, क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है, साँस गरम तथा तेज़ आती है अन्त में पाखाना पेशाब भी अधिक आने लगता है।

चिकित्सा

रिकेट रोग इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि सदोष भोजन जिसमें खनिज लवण और विटामिनों का अभाव होता है तथा अपूर्ण भोजन जिनमें हड्डियों, मांसपेशियाँ और टिशुओं को बनानेवाले पदार्थों की कमी या अभाव रहता है किस प्रकार स्वास्थ्य की नींव को खोद देते हैं। और सारे शरीर के ढाँचे को बिगाड़ देते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि पूर्ण स्वास्थ्यप्रद भोजन, जिसमें खनिज लवण और विटामिनों की अधिकता हो, की व्यवस्था की जाय और सूर्य किरणें-प्रचुर मात्रा में शरीर में पहुँचाई जायं, सूर्य-स्नान और वायु-स्नान कराया जाय तो जड़ से यह रोग दूर किया जा सकता है। बच्चे की संकट-जनक परिस्थिति का मुकाबिला करने का यही एक अमोघ शस्त्र है। हमारे

देश की माताएं छोटे बच्चों को तेल लगाकर जाड़े के दिनों में धूप में सुला देती हैं। प्रतिदिन के धूप मिलने से अस्थियाँ सबल रहती हैं और प्रायः अस्थि सम्बन्धी रोग उन्हें नहीं होता।

बच्चे को पर्याप्त मात्रा में दूध दीजिए। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो माता को ऐसा भोजन मिलना चाहिए जिसमें शरीर की आवश्यकता को पूरी करनेवाले सभी तत्व उसमें मौजूद हों। अर्थात् माता के भोजन में दूध, घी, सब्जी, ताजे मौसमी फल, सन्तरे सेब, मुनक्का, बादाम की प्रचुरता हो। यदि बच्चे को माता का दूध न मिलता हो तो गाय या बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए और बच्चे को सन्तरे का रस, पालक का रस, अनार का रस आदि भी देना चाहिए। माँ का दूध पीनेवाले बच्चों को भी फलों के रस देने की व्यवस्था करनी चाहिए। अनाज तो एक दम बन्द कर देना अच्छा होता है। ५-६ सन्तरे का रस और बकरी का दूध देकर यह रोग आसानी से भगाया जा सकता है।

'हमारे बच्चे' नामक पुस्तक में हमने बच्चों के भोजन के सम्बन्ध में काफी विस्तार से लिखा है। उसी नियम के अनुसार बच्चों के भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। दिन में कम से कम दो बार धूप स्नान कराना चाहिए। जब बच्चा खेलता हो तो उसके सब कपड़े अकसर उतार देना चाहिए जिसमें उसके बदन में हवा और सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें लग सकें। जबतक रोग बिलकुल निर्मूल न हो जाय, अस्थियाँ मजबूत न हो जायं, स्नायु और मांसपेशियाँ पूर्ण स्वस्थ न बन जायं तबतक अनाज खाने को न दिया जाय।

काडलिवर आयल (मछली का तेल) रिकेट रोग की अच्छी औषधि समझी जाती है। परन्तु काडलिवर आयल देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि विटामिन बी और सी वाले फल और शाक-तरकारियाँ बच्चों को अवश्य पहुँचे। यदि विटामिन बी और सी ऊपर से नहीं पहुँचाया जाता तो काडलिवर आयल से लाभ के बदले

हानि होने का ही खतरा अधिक रहता है। मछली के तेल की मालिश भी की जा सकती है। मालिश से भी अच्छा लाभ होता है। काड-लिवर आयल के बदले यदि बच्चों को मक्खन दिया जाय तो उनका स्वास्थ्य जल्द सुधरता है। दूध के साथ सन्तरे का रस और दो-चार चम्मच पालक का रस देते रहने से विटामिन बी और सी की कमी शरीर में नहीं रह जाती। दूसरे दूध का सारा कैलशियम पचने लगता है। और शरीर की कैलशियम की कमी शीघ्र पूरी हो जाती है। हड्डियाँ मजबूत बनने लगती हैं। उनकी कमजोरी दूर होने लगती है। तथा पूर्ण भोजन प्राप्त होने से शरीर में रक्त और मांस की अधिक वृद्धि होने लगती है स्नायुएं और टिशूज़ सबल होने लगते हैं और शरीर का सारा रोग दूर हो जाता है।

बच्चे का स्वास्थ्य सुधारने का प्रबन्ध करना चाहिए। स्वास्थ्य में सुधार होने पर, शरीर के सब तत्व पूरे-पूरे पहुँचते रहने पर अस्थियों का विकार स्वयं ही धीरे-धीरे दूर हो जाता है और रोग नष्ट हो जाता है।

आयुर्वेद के मत से प्रवाल, मोती, मुक्ता शुक्ति और अभ्रक, लौह आदि की भस्में उचित मात्रा में देनी पड़ती हैं, स्वर्ण बसन्त मालती रस, गुरुच का सत्व, कुमार कल्याण रस आदि से भी लाभ होता है। अरविन्दासव बच्चों के लिए अच्छी घुट्टी का काम करता है। महा-लाक्षादि तैल, लाक्षादि तैल और नारायण तैल आदि की मालिश करने से भी लाभ होता है। अच्छा यह होता है कि महालाक्षादि तैल की मालिश की जाय, दूध सन्तरे मक्खन आदि विशेष रूप से दिया जाय और बसन्त मालती रस गुरुच सत्व और प्रवाल मिला कर उचित मात्रा में दिया जाय। तथा धूप आदि उचित रूप में मिलने की व्यवस्था की जाय।

स्कर्वी

रिकेट की तरह ही यह स्कर्वी रोग भोजन में आवश्यक तत्वों

की न्यूनताओं के कारण उत्पन्न होनेवला रोग है। विटामिन सी की कमी इस रोग का कारण है। यह बात नहीं है कि यह रोग केवल गरीबों को ही होता हो जिनका भोजन शरीर के लिए आवश्यक तत्वों से शून्य या न्यून होता है। बल्कि सत्यता यह है कि ऐसे घरों में यह रोग होता है जो धनी वर्ग है और जहाँ, चीनी, चाय, मिठाई बिसकुट, टिन में बन्द मछलियाँ, गोश्त, आलू, पूरी, परेठा, मलाई, कन्डेंस्ड मिल्क आदि खाने में बहुत अधिक पैसा खर्च किया जाता है और रोज ही ऐसी ही चीजें खाई जाती हैं।

यह रोग समुद्र में चलनेवाले जहाजों के नाविकों को अकसर होता है जिनको बरसों तक समुद्र में ही रहना पड़ता है और जिनको वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये भोजन, डिब्बे बन्द दूध, मछली, गोश्त आदि और बिसकुट आदि ही भोजन मिलता है और ताजे मौसमी फल और ताजी हरी तरकारियाँ और साग सब्जी का अभाव रहता है।

भोजन में अनेक खनिज लवणों की कमी ही इस रोग का कारण है। यदि ताजे साग, ताजा दूध, मौसमी फल, हरी तरकारियाँ पर्याप्त मात्रा में रोज-रोज मिलती रहें जिससे सभी खनिज लवण उचित मात्रा में शरीर में पहुँचते रहें तो आवश्यक विटामिन भी मिलते रहते हैं। शरीर स्वस्थ और सबल बना रहता है।

स्कर्वी बच्चों को तो होता ही है बड़े लोगों को भी हो सकता है। यह रोग किसी-किसी में उग्र रूप में होता है और किसी-किसी में साधारण रूप में। इसका उग्र रूप बहुत कम दिखाई पड़ता है। जो बच्चे वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये बनावटी भोजनों पर पाले जाते हैं और उनको ताजे फलों का रस आदि पदार्थ नहीं पहुँचते उनको उग्र रूप का भी स्कर्वी हो जाता है। यह रोग उन लोगों को भी होता है जो मन्दाग्नि के कारण बहुत ही अधिक परहेज से रहते हैं और भोजन की केवल दो-चार ही चीज थोड़ी बहुत मात्रा

में खाकर किसी तरह जीवित रहते हैं। दूसरे उन लोगों को भी यह रोग हो सकता है जिनको भोजन सम्बन्धी जनून होता है और बड़े शंकित रहकर थोड़ी सी इनी-गिनी चीजें ही खाते हैं और इस मानसिक दुर्बलता के कारण भोजन में पर्याप्त मात्रा में खनिज लवण और विटामिनों को ग्रहण नहीं करते। गरीब लोगों को भी गरीबी के कारण यह रोग हो सकता है जिनका भोजन केवल नमक और रोटी है अथवा थोड़ा गुड़ और रोटी है।

इस रोग का आरम्भ बहुत धीरे-धीरे होता है। बच्चा पीला, कमजोर और दुर्बल पड़ने लगता है, वजन बराबर घटता है, बच्चा सुस्त और मिनमिनहा रहता है, आँखें बन्द किये या तो सोता है या सुस्त पड़ा रहता है। मसूड़े सूज जाते हैं, उनसे रक्त आने लगता है। दाँत ढीले पड़ जाते हैं और कुछ चबाना और खाना कष्टकर हो जाता है। यदि मुंह में दाँत न हों तो मसूड़े अनावश्यक रूप से पीले पड़ जाते हैं। अकसर ऐसा होता है कि मसूड़ों से या कहीं भी त्वचा से रक्त बहता है। जोड़ों में दर्द होता है।

इस रोग में अकसर निदान की गलती हो जाती है और लोग रिकेट, परालिसिस (लकवा), या वात व्याधि या रियूमेटिज्म समझने लगते हैं। इस रोग में काले या नीले रङ्ग के धब्बे शरीर पर पड़ जाते हैं, एक या अधिक अङ्गों में लकवा भी मार जाता है और जोड़ों में दर्द भी रहता है। इन्हीं लक्षणों से निदान करने में गलती होती है।

वस्तुतः रक्त में अम्लता बढ़ जाने से इस रोग में पित्त कुपित हो जाता और उसीके सभी लक्षण इस रोग में उत्पन्न होते हैं। शरीर पर नीले-काले धब्बे पड़ना, मसूड़े और शरीर से रक्त बहने लगना ये सब विकृत पित्त के ही लक्षण हैं। साथ ही वायु की विकृति भी रहती है इसीलिए अन्य लक्षण प्रगट होते हैं। चिकित्सा करते समय चिकित्सक को इन सब बातों पर भी ध्यान रखना चाहिए।

कुछ लोगों का ख्याल है कि नीबू में वह तत्व मौजूद है जो स्कर्वी को

मार भगाता है। परन्तु अमेरिका से प्रकाशित मेडिकल डिकशनरी का कहना है कि अनुसंधान द्वारा यह बात गलत साबित हो चुकी है। यह बात नहीं है कि नीबू इस रोग में हानिकर है या लाभ नहीं करता। सत्य बात यह है कि अकेला नीबू इस रोग को आराम नहीं कर सकता।

वस्तुतः अनुसंधान यह है कि इस रोग को मेडिटरेनियन लाइम मार भगाता है। उसमें विटामिन भी काफी अधिक मात्रा में है। नीबू को भी अंगरेजी में लाइम कहते हैं। इस लाइम शब्द की संदिग्धता के कारण यह भ्रम फैल गया।

चिकित्सा

स्कर्वी का रोग भोजन की व्यवस्था बिगड़ने के कारण या भोजन में खनिज लवण और विटामिनों की कमी के कारण तथा ताजे मौसमी फल और हरी शाक तरकारियों के अभाव के कारण होता है। इसलिए इस रोग का इलाज यही है कि भोजन में ये पदार्थ बढ़ा दिये जायं। सन्तरे का रस काफी मात्रा में दिया जाय। ताजा दूध दिया जाय। पालक, टमाटर, मूली, नेनुआ, तरोई, सलजम, लौकी आदि हरी तरकारियाँ काफी मात्रा में बढ़ाई जायं। गोभी, पात गोभी गाँठ गोभी आदि भी अच्छी चीजें हैं। गोभी, और पात गोभी का सलाद भी खाना चाहिए।

सूर्य-किरण स्नान, वायुस्नान का भी सहारा लेना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य सुधरे। जिन बच्चों को डिब्बा बन्द दूध मिलता हो उनको भी सन्तरे का रस प्रतिदिन नियमित रूप से मिलना चाहिए।

जहाँ तक सम्भव हो वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया गया भोजन बन्द किया जाय। क्योंकि यदि इनमें खनिज लवणों और विटामिनों का अत्यन्त अभाव नहीं भी रहता हो तब भी इनकी मात्रा उसमें न्यून अवश्य रहती है। और उस कमी को पूरी करने के लिए यदि फलों का रस, ताजी शाक तरकारियाँ काफी अधिक मात्रा में न ली जायं तो अभाव की पूर्ति नहीं होती और शरीर क्षीण और रोगी हो जाता है।

रोग हो जाने पर उसे आराम करने के लिए भोजन के बीच बीच कई बार ताजे फलों का रस, तरकारियों का सलाद और कच्चा रस अथवा उबालकर निकालो रस देने की व्यवस्था करनी चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि अन्न आदि यथासाध्य बन्द करके ताजे फल तरकारियों का रस और ताजा दूध ही भर पेट दिया जाय। बच्चे का साधारण स्वास्थ्य उन्नत बनाया जाय। सामान्य गरम जल में स्नान, सूर्य-स्नान आदि का सहारा तथा उचित मालिश की व्यवस्था करके रोग निवारक शक्ति बढ़ाई जाय और खनिज लवण और बिटा-मनों की कमी पूरी की जाय।

हमने ऊपर लिखा है कि रक्त की अम्लता बढ़ने से यह रोग होता है अतः रक्त की अम्लता दूर करने और पित्त घटाने की व्यवस्था करना आवश्यक है। एनिमा आदि की व्यवस्था करके पहले पेट साफ कर लेना अच्छा होता है। आयुर्वेद के मत से पेठा या सफेद कुम्हड़ा इस रोग में विशेष लाभकारी होना चाहिए इससे रक्त भिरने में कमी हो जाती है। साथ ही अन्य हरी पत्तीवाले शाक भी लाभ कर सकते हैं। ताजा दूध बहुत लाभ करेगा। मसूड़े पर नीबू का रस लगाना चाहिए दूब का रस भी लाभ करेगा। ताजे आँवले का रस काफी मात्रा में देना चाहिए। इसमें विटामिन-सी बहुत होता है और यह पित्त नाशक भी है। रक्तपित्त में भी यह बहुत लाभ करता है। यदि जोड़ों में दर्द बहुत हो तो उस पर गरम और ठंडी पट्टी रखने की व्यवस्था करनी चाहिए। पानी में नीबू का रस मिलाकर प्रतिदिन पीने को देना चाहिए।

अध्याय ८

विभिन्न प्रकार के रोग

सोते समय पेशाब करना

छोटे बच्चे तो अकसर सोते समय पेशाब कर देते हैं परन्तु बहुत से छोटे बच्चे भी ऐसे होते हैं जो बिस्तरे पर पेशाब करना पसन्द नहीं करते और जब पेशाब कर देते हैं तो रोने लगते हैं। अकसर माताएं उनके संकेत को समझतीं नहीं, इसी कारण वे बिस्तर गीला कर देते हैं। ३-४ वर्ष के बाद अथवा और अधिक अवस्था होने पर बिस्तर पर पेशाब करना अवश्य रोग है।

कुछ बच्चे तो आलस में ही उठना नहीं चाहते और पड़े-पड़े मूत देते हैं उनका आलस दूर करना चाहिए। जिसमें यह दुर्गुण न हो उनके लिए पूरा विश्राम मिलना चाहिए क्योंकि उत्तेजना, परिश्रम खेलने का अभाव आदि के कारण मानसिक स्नायुओं पर अधिक जोर पड़ने के कारण उन्हें पता ही नहीं चलता कि कब उन्होंने बिस्तर गीला कर दिया। ऐसे बच्चों को उत्तेजना या मानसिक चिन्ता का कोई अवसर नहीं देना चाहिए।

चिकित्सा

कुछ दिनों तक फलाहार कराइए। सिट्स बाथ दीजिए। पेड़ू पर ठंडे पानी से दिन में कम से कम दो बार रगड़-रगड़ कर स्पंज कराइए। गरम पानी का एनिमा प्रतिदिन देना चाहिए। कम से कम दस दिनों बाद रोटी सब्जी देना शुरू करना चाहिए।

रात को सोते समय पेशाब करनेवाले बच्चों को न तो मारना चाहिए और न गाली देना चाहिए बल्कि उनको अधिक प्यार करना चाहिए और उनका अधिक से अधिक विश्वास प्राप्त करना चाहिए।

जिसमें बच्चा निडर होकर बता सके कि उसे किस कारण पेशाब होता है और उस कारण को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। रात को सोते समय या सोने के कुछ पहले पानी बन्द कर देना चाहिए और पेशाब करके सोने जाने देना चाहिए । और चेष्टा यह करनी चाहिए की प्रत्येक दूसरे घंटे जगाकर पेशाब करा दिया जाय। कभी-कभी पेट में कोड़ पड़े रहने के कारण भी बच्चे रात को सोते ससय पेशाब करते हैं। एडिन्वायड ग्रन्थि के विकार के कारण भी यह रोग हो जाता है।

यदि साधारण उपाय से रोग न दूर तो आवश्यक रूप से किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

क्रिमिरोग--चुरने

क्रिमि कई प्रकार के होते हैं। कुछ का आकार बड़ा होता है और कुछ का आकार छोटा। थ्रेड वर्म सफेद रंग का गोल और छोटा कीड़ा होता है । इसको हिन्दी में सूंडी या चुरने कहते हैं। यह छोटी आँत के नीचे के हिस्से में तथा बड़ी आँतों में पाया जाता है। क्योंकि इन क्रिमियों के बढ़ने और जीवित रहने के लिए इन्हीं स्थानों पर उपयुक्त आहार तथा स्थान प्राप्त होता है।

ये कीड़े जब पड़ जाते हैं तब बच्चा रात को अच्छी तरह सो नहीं पाता क्योंकि गुदा में बड़े जोरों की खुजली मचती है। बच्चे को ठीक भूख नहीं लगती, रक्त की कमी हो जाती है, बच्चा कमजोर और चिड़चिड़ा हो जाता है । उसे बेचैनी बहुत रहती है और जलन के साथ दर्द होता है। उसे कब्ज रहने लगता है और पेशाब भी साफ नहीं आता।

उन क्रिमियों के अण्डे पानी के द्वारा या भोजन के द्वारा पेट में जाते हैं और वहीं बच्चे हो जाते हैं फिर उनके अंण्डे और बच्चे होते हैं इस प्रकार इनका परिवार बढ़ जाता है और कष्ट देता है। ये

क्रिमि यहाँ तक उपद्रव मचाते हैं कि इनसे कनवलशन या ऐंठन तथा मांसपेशियों में खिचाव होने लगता है जिसे कोरिया कहते हैं। तथा स्नायुएं कमजोर पड़ जाती हैं।

यह बात नहीं है कि क्रिमि के अंण्डे जब पेट में जाते हैं तभी यह रोग होता है परन्तु समझने की बात यह है कि यदि इन अंण्डों को जीवित रहने और बढ़ने के लिए हमारी आँतें उपयुक्त होगीं तभी ये बढ़ सकेंगे और अपना परिवार बढावेंगे। अतः इसके अण्डों का पेट के अन्दर जाना वास्तविक कारण नहीं है वास्तविक कारण तो हमारा वह भोजन है जो आँतों में जाकर सड़ता है और उन अण्डों को जीबित रहने के लिए उपयुक्त भोजन का काम देता है अतः इस रोग का भी कारण गलत ढङ्ग का भोजन और रहन-सहन ही है।

अधिक गुड़, चीनी, मिठाई, मैदा, बेसन, उरद, साग, आदि खाने के कारण छोटे बच्चों के पेट में चुरने पड़ते हैं। एक प्रकार के गोल केंचुए के आकार के क्रिमि पेट में पड़ते हैं उन्हें केंचुआ कहते हैं। एक प्रकार का कीड़ा पेट में और पड़ता है जिसे कद्दूदाना कहते हैं। यह आँतों में चिपक जाता है और इसके टुकड़े, जिनका आकार लौकी के बीज से मिलता-जुलता है, मल के साथ निकला करते हैं। जूं और लीख भी बाहरी क्रिमि हैं। रक्त में भी क्रिमि हो जाते हैं। चुरने या छोटे क्रिमि छोटे बच्चों को अकसर पड़ जाते हैं। क्रिमि रोग के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से हमने अचूक चिकित्सा विधान में लिखा है।

चिकित्सा

असावधान चिकित्सक कीड़ों को मारने के लिए प्रयत्न करते हैं जो गलत इलाज है। वह इसलिए कि क्रिमियों को मारने का प्रयत्न करनेवाले चिकित्सक शारीरिक अवस्था में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं करते। यदि आँतें साफ कर दी जायं और शरीर से वह कचरा निकाल दिया जाय जिस पर क्रिमि जीते हैं तो उनके जीने का

सहारा ही नष्ट हो जाता है और क्रिमि स्वयं नष्ट हो जाते हैं और बाहर से अन्दर जानेवाले अण्डे भी जीवित नहीं रह पाते। इसलिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि शरीर का विष निकाल दिया जाय और गन्दगी नष्ट कर दी जाय।

बच्चों को मांस-मछली, अण्डा, स्टार्चवाले भोजन, वासी भोजन, जेली, जाम, बिस्कुट, मिठाई, गुड़, चीनी आदि बिलकुल बन्द कर दीजिए और केवल फलों पर रखिए। बहुत मीठे फल जैसे आम, कटहल आदि मत दीजिए। मक्खन, घी, बनावटी दूध आदि बन्द कीजिए। प्रतिदिन गरम पानी का एनिमा दीजिए। बच्चे को थोड़ा खेलने दीजिए, गहरी साँस का अभ्यास कराइए। एनिमा के पानी में थोड़ा सा तारपीन का तेल डाल देना अच्छा होता है क्योंकि इस तेल के संयोग से कीड़े मर जाते हैं। नींबू का रस डालकर एनिमा देना भी अच्छा होता है। पानी गरम करते समय उसमें एक रत्ती तम्बाकू की पत्ती डाल दे और इसी पानी का एनिमा दे दे इससे भी कीड़े मर जाते हैं। तम्बाकू डालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इससे किसी-किसी को चक्कर आ जाता है। इसलिए पहले बहुत थोड़ा तम्बाकू डाले जैसे-जैसे बच्चा बर्दाश्त करे वैसे-वैसे बढ़ा कर एक रत्ती की मात्रा पर आवे।

कम से कम १० दिन केवल फलाहार कराने पर धीरे-धीरे रोटी सब्जी पर आना चाहिए और कुछ दूध भी देना आरम्भ करना चाहिए दूध सदैव ताजा और कच्चा ही देना अच्छा होता है।

(१) वायविडङ्ग का चूर्ण शहद से चटाने से पेट के क्रिमि मर जाते हैं। मात्रा ३-४ रत्ती।

(२) वायबिडङ्ग, पलास पापड़ा, जवाइन इन सब को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर डालें। उस चूर्ण में से ३-४ रत्ती की मात्रा खिलाने से पेट के कीड़े मर जाते हैं।

(३) डाक्टर लोग सेन्टोनिन का प्रयोग करते हैं।

(४) साइना २०० खिलाने से क्रिमि मर जाते हैं यह होमियोपैथी दवा है।

दाँत निकलते समय के रोग

दाँत निकलते समय बच्चों को अकसर अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हमारे देश में बच्चों के पालन-पोषण के ज्ञान की बहुत कमी है। गाँवों की जनता प्रायः अशिक्षित है उस तक ज्ञान का प्रकाश फैलाना है। वहाँ बच्चे भाग्य से ही जीते और मरते हैं। न उन्हें कोई शिशु-पालन का नियम मालूम है न कोई शिक्षा की व्यवस्था है। अतः गाँवों में और शहरों में भी दाँत निकलते समय बच्चे अधिकांशतः रोगी हो जाते हैं।

पश्चिमी देशों में पहले जितना कष्ट दाँत निकलने में बच्चों को होता था अब वह बहुत कम हो गया है क्योंकि अब बच्चों को पालने के लिए ऐसे वैज्ञानिक ढङ्ग काम में लाये जाते हैं कि होशियारी से पालने पर बच्चों को बिना कष्ट के ही अकसर दाँत निकल आते हैं।

भूख की कमी, नींद कम आना, चिड़चिड़ा होना, रोना, क्रोध करना दाँत निकलते समय प्रायः सभी बच्चों को हो जाते हैं। यदि माता सावधान रहे तो इन लक्षणों से परेशानी नहीं होगी। होशियारी से यदि बच्चों का पलान-पोषण किया जाय तो कनवलशन और फड़कन के रोग बिलकुल रोके जा सकते हैं।

असल बात यह है कि यदि बच्चों का भोजन ठीक हो और स्वास्थ्य दायक नियमों के अनुसार वे पाले जायं तो उन्हें कोई रोग नहीं होता। बच्चों के पालने-पोसने का सही नियम हमने अपनी पुस्तक "हमारे बच्चे" में विस्तार के साथ लिखा है। जब बच्चों को अनियमित रूप से भोजन दिया जाता है और ऐसा भोजन दिया जाता है जिसमें खनिज लवणों और विटामिनों का अभाव होता है तथा जो रक्त में अम्लता पैदा करनेवाले होते हैं तभी बच्चे अस्वस्थ होते हैं।

अस्वास्थ्य-कर तरीके से बच्चों को पालने से भी बच्चे अस्वस्थ रहते हैं। और उन्हीं को दाँत निकलते समय कष्ट होता है। जो बच्चे अस्वस्थ रहते हैं उनको दाँत निकलते समय बहुत कष्ट होते हैं। दाँत निकलते समय अकसर बच्चों का हजमा बिगड़ जाता है, दस्त आने लगते हैं, अकसर उन्हें अनपचा दस्त होता है और दस्त में फटा-फटा दूध दही के जमे हुए अंश के समान निकलता है। कभी-कभी हरे पीले दस्त आने लगते हैं वमन होने लगती है। यों कहना चाहिए कि दाँत निकलते समय बच्चों को प्रायः सभी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। विशेष करके ज्वर, अतीसार, खाँसी, वमन, सिर में दर्द, आँख उठना, पोथकी (पलकों का रोग) और विसर्प, भूख न लगना, जुकाम, दुर्बलता सिर दर्द आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दाँत निकलने के रोग में बच्चे अकसर मर जाते हैं। यदि दाँत निकलने के रोग उत्पन्न हो जायं तो बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा और चिकित्सा करनी चाहिए। दाँत निकलते समय जो रोग हों उनका इलाज इसी पुस्तक में लिखी विधि से करना चाहिए अथवा किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

दाँत निकलते समय बच्चों को प्यास अधिक लगती है इसलिए पानी अधिक पिलाना चाहिए। और भोजन कुछ कम कर देना चाहिए। सम्भव है ज्वर और दस्त में बच्चे को उपवास भी कराना पड़े। अकसर कैलशियम की कमी के कारण ही बच्चों को दाँत निकलते समय दस्त और खाँसी आदि रोग हो जाते हैं। इसीलिए कैलशियम मिश्रित औषधियाँ अधिक लाभ करती हैं और हाजमा भी दुरुस्त हो जाता है।

चिकित्सा

(१) दाँत के मसूड़ों को संस्कृत में दन्तपाली कहते हैं। चूना और शहद मिलाकर दन्तपाली पर लेप करने से बिना तकलीफ के दाँत निकल आते हैं।

(२) आमले का रस और शहद का लेप दन्तपाली पर करने से दाँत बिना तकलीफ के निकल आते हैं।

(३) सिरस के बीज को रात को पानी में भिगो देना चाहिए जब फूलकर मुलायम हो जाय तब उसे छेद कर माला बना लेना चाहिए। इस माला को पहनाने से दाँत बिना कष्ट के निकलते हैं।

(४) रोहू मछली के दाँत की माला बनाकर पहनाने से बिना कष्ट के दाँत निकल आते हैं उसी प्रकार सीप की माला पहनाने से भी लाभ होता है।

किसी-किसी बालक के मसूड़े बड़े कड़े होते हैं उनको छेदकर दाँत बाहर नहीं निकल पाते। ऐसी दशा में सर्जन की सहायता से मसूड़ा जरा-सा खोलवा देने की आवश्यकता पड़ती है। गाँवों में बहुत सी स्त्रियाँ सरपत के पत्ते से मसूड़ा चीर देती हैं और कष्ट मिट जाता है।

स्वच्छ चूने का पानी पिलाते रहने से अथवा उसी पानी में चीनी का शरबत पका लेने से और वही शरबत उचित मात्रा में चटाने से कैलशियम की कमी पूरी हो जाती है और दाँत निकलते समय खाँसी अतीसार आदि रोग नहीं होते।

डाक्टर लोग सीरप हाइपो फास्फेट आफ लाइम चटाने की राय देते हैं। यह लाल शरबत है और अच्छा लाभ करता है।

दूध डालना

बच्चे दूध पीने के बाद कभी-कभी दूध डाल देते हैं परन्तु जब वे बार-बार दूध फेंक देते हैं तब यह दूध डाल देने या दूध वमन कर देने का रोग समझा जाता है। पहले तो बालक फटा-फटा दूध डालता है, उसमें खट्टी-खट्टी बू आती है, कभी-कभी उसमें कफ भी मिला रहता है। कुछ दिनों बाद पानी की तरह पतली-पतली वमन होने लगती है। पेट फूल जाता है और उसमें से आवाज आती है। बच्चे का रंग

पीला पड़ जाता है, कभी-कभी पतला दस्त आने लगता है और कभी-कभी कब्ज के साथ दस्त होता है। बच्चा कमजोर हो जाता है। जो कुछ खाता-पीता है सब निकल जाता है। शरीर छूने में गरम नहीं मालूम होता ठंडा ही रहता है और बच्चों का स्वभाव चिड़-चिड़ा तथा जिद्दी हो जाता है। यह रोग भी अकसर दाँत निकलते समय होता है। इसमें वमन नाशक उपाय करना चाहिए।

यकृत—लिवर

भोजन की गलतियों के कारण बच्चों का लिवर या यकृत खराब हो जाता है। कभी-कभी उसका आकार बढ़ जाता है, कभी उसमें किंचित सूजन आ जाती है। कभी-कभी वह उचित रूप से अपना कार्य नहीं कर पाता। जब छोटे बच्चों को गाढा दूध दिया जाता है जिसमें घी अधिक होता है अथवा दूध में चीनी मिलाकर दिया जाता है अथवा मैदा, चावल, चीनी, गुड़, आदि अधिक मात्रा में खिलाया जाता है तब लिवर या यकृत पर अधिक जोर पड़ता है और उन पदार्थों के पचाने में यकृत को अधिक काम करना पड़ता है उसके कारण वह बढ़ जाता है और उसमें विकार आ जाता है।

ज्वर की दशा में अथवा ज्वर उतर जाने के बाद कमजोरी की दशा में जब अपथ्य भोजन बच्चों को दिया जाता है तब भी यकृत में विकार आता है। बच्चों का यकृत रोग बड़ा खतरनाक समझा जाता है क्योंकि अधिकांश रोगी इस रोग से आराम नहीं होते। ५ वर्ष तक की अवस्था में जो यकृत विकार होता है उसे ही इनफैंटाइल लिवर कहते हैं। यकृत हमारे शरीर का बहुत ही आवश्यक अंग है। यह पसलियों के नीचे पेट के किंचित ऊपर दाहिनी ओर होता है। २ वर्ष की अवस्था तक स्वस्थावस्था में भी यह हाथ से टटोलने से मालूम हो सकता है क्योंकि इस अवस्था तक यह किंचित बढ़ा हुआ रहता है। अवस्था-वृद्धि के साथ यह ऊपर उठ जाता

है और हाथ से टटोलने पर यह मालूम नहीं होता। जब यह बढ़ जाता है और इसमें रोग हो जाता है, तब हाथ से टटोलने से मालूम होता है।

यकृत के बढ़ने या विकार-ग्रस्त होने का खास लक्षण यह है कि थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहने लगता है, हाजमा बिगड़ जाता है, पेट बढ़ जाता है, बच्चा दुबला हो जाता है, दस्त साफ नहीं आता, खाँसी भी आने लगती है, कभी-कभी ऐसा होता है कि पतला पाखाना आने लगता है। बच्चे के शरीर में रक्त नहीं बनता, बच्चा कमजोर होता जाता है। यदि रोग अधिक बढ़ जाय तो शरीर पीला पड़ जाता है क्योंकि शरीर में रक्त की कमी हो जाती है। तीन वर्ष की अवस्था तक यदि यकृत में विकार आ जावे तो बहुत ही खतरनाक होता है। यह रोग १०-१२ वर्ष की अवस्था तक भी खतरनाक ही होता है क्योंकि लोग गलती से रोटी, चावल आदि खिलाते ही रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उसके पचाने में यकृत पर अधिक जोर पड़ता है और दशा प्रतिदिन बिगड़ती जाती है। हालत यहाँ तक बिगड़ जाती है कि चेहरे पर और हाथ-पाँव में सूजन आ जाती है। इस रोग में स्टार्च और चीनी गुड़ मैदा आदि बहुत ही हानिकर होते हैं।

यकृत पेट में दाहिनी ओर और प्लीहा बाईं ओर होता है। जिन कारणों से यकृत में रोग होता है उन्हीं कारणों से प्लीहा में भी रोग हो जाता है, प्लीहा में रोग होने पर वह बढ़ जाता है, और प्रायः वे ही लक्षण प्रगट होते हैं जो यकृत रोग में होते हैं। दोनों की चिकित्सा विधि भी समान ही है।

चिकित्सा

इस रोग में स्टार्च, चीनी, गुड़ आदि एक दम बन्द कर देना चाहिए और सन्तरे का रस, टमाटर का रस अथवा पालक रस देना चाहिए। यदि बालक कुछ खाता-पीता हो तो मौसमी फल खिलाइए या परवल, लौकी, नेनुआ आदि की तरकारियाँ उबालकर खिलाने

की व्यवस्था कीजिए।

यदि बालक केवल दूध पीता हो तो उसे मक्खन निकाला हुआ दूध देना अच्छा होगा क्योंकि मक्खन सहित दूध देने से यकृत पर जोर पड़ेगा और लाभ कम होगा। जो लोग व्यवस्था कर सकें ताजा मठा, गाय के दूध का बना हुआ जिसमें से मक्खन निकाल लिया गया हो, दे सकते हैं। यकृत रोग के सम्बन्ध में हमने अपनी पुस्तक अचूक चिकित्सा-विधान में काफी विस्तार से लिखा है उसे देखना चाहिए। इस रोग में बिटामिन ए की आवश्यकता बहुत रहती है, इसलिए ऐसे फल और तरकारियाँ देने की व्यवस्था करनी चाहिए जिनमें विटामिन ए होता है। परन्तु हमारी राय में मक्खन नहीं देना चाहिए। डाक्टर लोग लिवर इक्सट्रैक्ट—यकृत का सत्व—देना पसन्द करते हैं। कभी-कभी इससे बहुत अच्छा लाभ भी होता है।

लोहासव और कुमार्यासव इस रोग की अमोघ औषधि हैं। लौह भस्म से भी अच्छा लाभ होता है। लौह मिश्रित औषधियों से लाभ होता है। यदि ज्वर हो तो ज्वर की भी चिकित्सा करने की आवश्यकता रहती है।

ऐसी औषधियाँ जो हाजमे को दुरुस्त करें, भोजन को पचने में मदद दें लाभ करती हैं।

(१) मूली का रस बासी मुंह पिलाने से लाभ होता है।

(२) मदार के पीले पत्ते और सेंधा नमक हाँड़ी में बन्द कर के फूंक दे और चूर्ण को छान कर २-३ रत्ती की मात्रा में शहद से चटाने से भी लाभ हो जाता है।

यह याद रखना चाहिए कि जब तक पथ्य न पालन किया जाय किसी भी औषधि से लाभ नहीं होता।

साधारण स्वास्थ्य उन्नत बनाने के लिए धूप-स्नान, वायु-स्नान, स्पांजिंग और गहरी साँस का अभ्यास करना आवश्यक है।

दांत किटकिटाना

बहुत से बच्चे रात को सोते समय दाँत किटकिटाया करते हैं। जब पेट में कीड़ियाँ रहती हैं तभी अकसर बच्चे दाँत किटकिटाते हैं।

पेट साफ़ करना चाहिए पथ्य भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि बच्चा अन्न खाता हो तो मिर्च मसाला आदि बन्द करना चाहिए। कुछ दिन फलाहार कराना अच्छा है। इसके बाद काकड़ा सिंगी और सागौन का काढ़ा बनाकर उसी काढ़े में चौथाई दूध डाल कर पकाना चाहिए। जब केवल दूध शेष बच रहे तब उसी की मालिश पाँव के तलवों में रोज करने से कुछ दिनों में दाँत चबाना बन्द हो जाता है।

नाभिपाक

यदि बच्चों की नाल काटते समय थोड़ी भी असावधानी हो जाती है अथवा नाल खिंच जाती है अथवा जिस औजार से नाल काटी जाती है यदि वह स्वच्छ और कीटाणु-रहित न हो तो बच्चों की नाभी पक जाती है, उसमें से मवाद आने लगता है। जिन माता-पिता को गरमी का रोग होता है उनके बच्चों का रक्त जन्म से ही विकृत होता है। ऐसे विकृत रक्त वाले बच्चों की नाभि अकसर पक जाती है।

चिकित्सा

लोध, प्रियंगु, हलदी, और मुलहठी समान भाग लेकर चौगुना पानी डालकर काढ़ा बनावे जब चौथाई काढा बच रहे तब छानकर काढे का चौथाई तिल का तेल डालकर तेल पका ले। इसी तेल को नाभि पर लगावे और घाव में टपकावे तथा इन्हीं औषधियों का चूर्ण नाभि पर बुरक दे। इससे नाभि-पाक में लाभ होता है।

डाक्टर लोग सिलवर नाइट्रेट टच करते हैं। इससे भी लाभ होता है। सिलवर नाइट्रेट बहुत तेज औषधि है किसी जानकार चिकित्सक

की देख-रेख में इसका प्रयोग करना चाहिए क्योंकि यह घाव को जला देता है।

बरगद की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, पाकड़ की छाल और गूलर की छाल का चूर्ण बनाकर नाभिपाक पर छिकड़ने से नाभिपाक कई दिनों में आराम हो जाता है। नाभि पर बहुत हलकी भाप देने से घाव जल्द सूखता है।

गुदा पाक

जब बच्चों को ऐसा भोजन दिया जाता है जिससे पित्त अत्यधिक बढ़ जाय अथवा दूध पीनेवाले बच्चों की माताएं जब स्वयं ऐसा भोजन करती हैं जिससे उनके दूध में विकार आ जाय और उस दूध से बच्चे का पित्त बढ़ जाय तब अकसर बच्चों की गुदा पक जाती है और लाल हो जाती है।

चिकित्सा

गुदा पकने पर पित्त नाशक क्रिया करनी चाहिए। केवल शुद्ध दूध बच्चे को पीने को दिया जाय और मौसमी फलों का रस दिया जाय। यदि आवश्यकता हो तो एनिमा देकर पेट साफ कर दिया जाय। यदि बच्चा बड़ा हो तो उसे ६-६ घंटे पर दूध देने की व्यवस्था की जाय।

(१) रसांजन खिलाने से तथा रसांजन का ही लेप करने से गुदापाक आराम हो जाता है।

(२) शङ्ख, मुलहठी और रसोत का लेप करने से गुदापाक आराम हो जाता है।

(३) बकरी का दूध और मुलहठी के काढ़े से गुदा धोने से भी लाभ होता है।

(४) कड़वा तेल का लेप करके हाथ से हलके-हलके सेंकने से लाल गुदा आराम हो जाती है।

तुण्डी

बहुत से बच्चों की नाभि वायु से भर जाती है, और फूलकर ऊपर उठ आती है तथा उसमें दर्द होता है इस रोग को तुण्डी रोग कहते हैं।

चिकित्सा

मिट्टी या ईंट आग में लाल करके उसे दूध में बुझा दे और उसी गरम ईंट से उठी हुई नाभि का स्वेदन करे। इससे नाभी का शोथ शान्त हो जाता है। माता को वायु कारक आहार-विहार बन्द कर देने की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि माता के भोजन द्वारा तैयार दूध पीने से ही बच्चे में वायु का विकार होता है।

मुख-स्राव और मुख-पाक

बच्चे जब छः मास के हो जाते हैं तब उनके मुख में पाचक रस बनने लगता है। अनेक बच्चों को इसी अवस्था में लार बहने लगती है। इसीको मुख-स्राव कहते हैं। जब बच्चों का मुख पक जाता है अथवा मुंह में दाने पड़ जाते हैं या निनावाँ हो जाता है तब भी मुंह से लार बहने लगती है। लार बहने से बच्चा बहुत कमजोर हो जाता है। स्त्रियाँ अकसर कहती हैं कि गर्भावस्था में जब उन्हें इच्छित पदार्थ खाने-पीने को नहीं मिलते तब लार बहने लगती है। लार बहने से पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है और बच्चा कमजोर हो जाता है।

चिकित्सा

(१) सारिवा, मुलहठी, पठानी लोध और तिल इनका काढ़ा बनाकर उसी काढ़े से मुंह प्रतिदिन धोना चाहिए और मुंह में यही लगाना भी चाहिए। इससे लार बहना बन्द हो जाता है।

(२) यदि मुंह पकने या निनावाँ के कारण लार बहती हो तो मुख-पाक की चिकित्सा करनी चाहिए।

(३) छोटी हर्रे घिसकर मुख में लेप करने से लार बहना बन्द

होता है और मुंह के घाव भी आराम होते हैं।

(४) पीपल की छाल और पीपल की पत्ती पीस कर उसमें शहद मिलाकर लेप करने से मुख-पाक आराम होता है।

(५) गेरू, सफेद कत्था, छोटी इलाइची, कपूर और शीतल चीनी का चूर्ण मुंह में बुरकने से मुख-पाक आराम होता है।

क्षीणता—सूखा रोग (मराजमस)

छोटे बच्चे अकसर सूखने लगते हैं और उनका वजन कम होने लगता है। यह स्वयं कोई रोग नहीं बल्कि कई रोगों में लक्षण के समान उत्पन्न होता है। क्षय रोग, कैनसर, दीर्घकालीन ज्वर, कब्ज, हृदय रोग, और पैतृक सिफलिस या गरमी आदि कारणों से दुर्बलता बढ़ती है और सूखा रोग हो जाता है अधिक अवस्था के बच्चों में यह लक्षण आँतों के क्षय के कारण हो सकता है। अतीसार के कारण तथा ठीक-ठीक न पचने के कारण भी बच्चों को दुबलेपन का रोग हो जाता है। रोग के कारण उनका पोषण नहीं होता और वे भोजन ठीक-ठीक पचा नहीं पाते इस अवस्था में भी वे क्षीण होने लगते हैं। इसी अवस्था को डाक्टर लोग मराजमस कहते हैं। क्षीणता को वेस्टिंग डिजीज़ भी कहते हैं। यकृत रोग के कारण भी बच्चों का वजन घटता है। यदि बच्चे का वजन घटने लगे तो किसी चतुर चिकित्सक को दिखाकर रोग का निदान कराना अच्छा होता है। जिसमें ठीक-ठीक रोग का निर्णय हो सके। छोटे बच्चों को अकसर यह रोग खिलाने-पिलाने की गड़बड़ी के कारण हो जाता है और जो बच्चे बार-बर खिलाए जाते हैं उन्हें अकसर यह रोग हो जाता है। जिन बच्चों को भर पेट भोजन या दूध नहीं मिलता उनको भी यह रोग हो जाता है। अकसर माताएं छोटे बच्चों को जभी वह रोता है तभी उसे चुप करने के लिए दूध दे दिया करती हैं या उसे कुछ खिला-पिला देती हैं यह आदत भी बच्चों को क्षीण

कर देती है। उसी प्रकार भैंस का दूध देने से भी बच्चे क्षीण होने लगते हैं क्योंकि उसकी प्रोटीन और वसा वे नहीं पचा पाते। वैसे ही समूचा गाय का दूध पीनेवाले छोटे बच्चे भी रोगी हो जाते हैं। कभी कभी अत्यधिक पानी मिला दूध पीने के कारण अपूर्ण भोजन मिलने से भी बच्चे क्षीण होने लगते हैं। उसी प्रकार अधिक मात्रा में चीनी, गुड़, स्टार्च आदि खिलाने से भी बच्चा क्षीण हो जाता है। गरमी के दिनों में अतीसार हो जाने और अधिक दिनों तक उसके रह जाने से भी यह रोग हो जाता है। माता जब गुड़ चीनी, स्टार्च आदि अधिक मात्रा में खाती है तो उसका दूध बिगड़ जाता है और रोग उत्पन्न करने लगता है। तालुकंटक और छोटी अवस्था के रिकेट में भी बच्चे क्षीण हो जाते हैं। मांसपेशियाँ सूख जाती हैं। जब बच्चा सूखने लगता है तब रक्त की कमी से उसका शरीर पीला पड़ जाता है शरीर दुर्बल हो जाता है, हाथ और पाँव बिलकुल पतले हो जाते हैं, पेट निकल आता है, बच्चा भूख-भूख चिल्लाता है और खाते रहने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता। चूतड़ सूख जाता है, गाल पिचक जाते हैं और हड्डियाँ निकल आती हैं।

चिकित्सा

अच्छे चिकित्सक के परामर्श से चिकित्सा करनी चाहिए और जिस कारण से रोग हुआ हो उसका इलाज होना चाहिए। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो उसे वह मिलते रहना चाहिए। यदि बच्चा ऊपरी दूध पर रहता हो तो उसे उचित नियमानुसार देना चाहिए जैसा कि हमने अपनी पुस्तक "हमारे बच्चे" में बच्चों को दूध देनेवाले अध्याय में बताया है। बच्चे को टमाटर का रस या सन्तरे का रस पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। बच्चे का आहार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। और बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि बकरी का दूध न तो गाय का दूध उचित पानी मिलाकर अथवा मक्खन निकालकर देना चाहिए। क्षीण होते हुए बच्चों की

पाचन शक्ति मक्खन देने से या वसा देने से और क्षीण होती है इसीलिए इस रोग में काडलिवर आयल लाभ के बदले हानि पहुँचाता है। बच्चे को सरदी से बचाना चाहिए और उसे काफी मात्रा में धूप मिलने की व्यवस्था करनी चाहिए। बच्चे को उचित मालिश की व्यवस्था कीजिए और आयुर्वेद की विधि से तैयार किया लाक्षादि तैल की मालिश कराइए। इस रोग में औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी सावधानी पूर्वक भोजन-सुधार की। यदि दस्त अधिक आते हों तो दस्त बन्द करने की व्यवस्था करनी चाहिए। भृङ्गराज को पीस कर निकाला रस एक-एक चम्मच की मात्रा में दिन में २-३ बार देने से दस्त बन्द हो जाते हैं, हाजमा दुरुस्त हो जाता है और बच्चे स्वस्थ होने लगते हैं।

कैलशियम पहुँचाने से इसमें भी लाभ होता है। हाइपोफासफेट आफ लाइम का शरबत लाभ करता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि इक्सट्रैक्ट आफ माल्ट एक चम्मच की मात्रा में दिन में तीन बार देने से अच्छा लाभ होता है। यदि क्षय के कारण यह रोग होता है तो जहर मोहरा खताई की भस्म आधी रत्ती की मात्रा में खिलाने से तथा यही भस्म तेल में मिलाकर मालिश करने से लाभ होता है। ताल में होनेवाले घोंघा का मांस रस खिलाने से भी लाभ होता है।

सूखा रोग से पीड़ित बच्चे को मुर्गी के अण्डे की जर्दी पर बैठाने से बहुत लाभ होता है। अण्डा तोड़ कर किसी तसले या कम्बल पर उसकी जर्दी उंडेल देनी चाहिए। उसी पर बच्चे को बैठाना चाहिए। थोड़ी देर में बच्चा गुदामार्ग से उसे सोख लेगा। प्रतिदिन एक अण्डे की जर्दी पर बैठाना चाहिए। जब सूखा रोग का असर समाप्त हो जायगा, तो जर्दी गुदामार्ग से पेट में नहीं जायगी।

अध्याय ६

आयुर्वेदीय मत से बच्चों के रोग

आयुर्वेद का मत बच्चों के रोग के सम्बन्ध में यह है कि जो रोग बड़े लोगों को होते हैं वे सब के सब बच्चों को होते हैं। किन्तु कुछ खास रोग हैं जो केवल बच्चों को ही होते हैं। बच्चे तीन प्रकार के होते हैं—केवल दूध पीनेवाले, दूध पीनेवाले और अन्न खानेवाले तथा केवल अन्न ही खानेवाले अर्थात् ८-१० वर्ष के बच्चे।

विकृत दूध पीनेवाले बच्चे अकसर रोगी हो जाते हैं। उसी प्रकार विकृत अन्न खाने से भी बच्चे रोगी हो जाते हैं। माता के विकृत-आहार-विहार का भी असर बच्चों के रोगी होने में पड़ता है।

बालकों में होनेवाले खास रोग ये —

(१) तालु कंटक, (२) महापद्मक, (३) पारिगर्भिक, (४) तुण्डी, (५) दन्तोद्भेदक रोग, (६) गुदापाक, (७) कुकूणक, (८) अजगल्ली और (९) अहिपूतना। इनमें से तुण्डी, गुदापाक और दन्तोद्भेदक रोगों का वर्णन हमने ८ वें अध्याय में किया है। शेष रोग इस अध्याय में दिये जायंगे। कुछ प्राचीन पुस्तकों में अहितुण्डिका, अनामक और पश्चाद्रुज नामक रोगों का वर्णन है। इनके लक्षण हमें प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिले और न तो इनका नामान्तर ही मालूम हुआ। इसलिए लक्षण नहीं लिखे गये। पश्चाद्रुज का लक्षण इस पुस्तक में दिया गया है। बच्चों को छोटी अवस्था में कुछ विशेष प्रकार के ग्रह भी सताया करते हैं। आधुनिक पाश्चात्य ढङ्ग के चिकित्सक सम्भव है उसपर विश्वास न करें परन्तु उन लक्षणों के रोग होते हैं। उन ग्रहों का वर्णन और चिकित्सा भी इस पुस्तक में लिखी गई है।

माता का विकृत दूध पीने से बच्चे रोगी हो जाते हैं। छोटे

बच्चों को रोग तभी होता है जब उनका भोजन या उनको मिलने-वाला दूध विकृत या विकार युक्त होता है। माता के दूध में तभी विकार आता है जब माता के आहार-विहार में गड़बड़ी होती है। आयुर्वेद के मत से दूध के चार प्रकार के विकार होते हैं—(१) वात से विकृत (२) पित्त से विकृत (३) कफ से विकृत और (४) तीनों दोषों के कारण या सन्निपात के कारण विकृत।

वात विकृत दूध

वात विकृत दूध पीने से बच्चों को वात सम्बन्धी रोग होते हैं। बच्चे की आवाज धीमी पड़ जाती है शरीर दुर्बल और कृश हो जाता है तथा वायु—अपान वायु—मल और मूत्र के निकलने में रुकावट हो जाती है, मल सूख जाता है तथा कब्ज हो जाता है और पेशाब भी कम उतरता है।

पित्त विकृत दूध

पित्त से विकृत हुआ दूध पीने से बालक शोथ, कामला और पित-रोगवाला होता है। उसे पतले दस्त आते हैं उसका सारा शरीर गरम रहता है और उसे प्यास बहुत लगती है।

कफ विकृत दूध

कफ के कारण बिगड़ा हुआ दूध पीने से बच्चे को कफ के रोग उत्पन्न होते हैं उसे लार बहती है, नींद बहुत आती है मुंह और आँखों पर सूजन आ जाती है, वमन होती है और बच्चा ऐसा रहता है मानो उसके हाथ-पाँव जकड़ से गये हैं।

द्वन्दज और सन्निपात विकृत दूध

तीनों दोषों के कारण विकृत हुआ दूध पीने से बालक में सभी दोषों के लक्षण दिखाई पड़ते हैं

दो दोषों से विकृत हुआ दूध पीने से बालक में दो दोषों के लक्षण प्रगट होते हैं। जैसे वात कफ से विकृत होने पर वात और कफ, वात

पित्तमें वायु और पित्त के, और कफ और पित्त में कफ और पित्त के लक्षण दिखाई पड़ेंगे।

आयुर्वेद के मत से दूध की परीक्षा नीचे हम दे रहे हैं। वात से विकृत दूध की पहचान यह है कि उसमें कसैला रस रहता है और वह पानी में तैरता है।

पित्त से विकृत दूध कड़वा, अम्ल और नमकीन रस वाला होता है और उसमें पीली धारियाँ होती हैं।

कफ से विकृत दूध गाढ़ा होता है और पानी में डूब जाता है और अत्यन्त चिकना होता है। दो दोषों से दूषित दूध में दो दोषों के लक्षण दिखाई पड़ते हैं और तीन दोषों से विकृत दूध में तीनो दोषों के लक्षण मिलते हैं।

जो दूध शुद्ध होता है तथा विकार रहित होता है वह पानी में डालने पर जल में मिलकर एकाकार हो जाता है, मधुर होता है किंचित पीला या स्वच्छ होता है। और उसमें कोई विवर्णता नहीं होती है।

चिकित्सा

वात विकृत दुग्ध का दोष दूर करने के लिए ३-४ दिनों तक दशमूल का काढ़ा पिलाना चाहिए और वात नाशक औषधियों से पकाया हुआ घी पिलाना चाहिए और हलका जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए।

पित्त से विकृत दुग्ध में गुडूच, परवल के पत्ते, नीम की अन्तर छाल, और लाल चन्दर का विधि से काढ़ा बनाकर थोड़ी देशी चीनी मिलाकर बच्चे और माता दोनों को पिलाना चाहिए।

कफ से विकृत दूध में घी में मुलहठी और सेंधा नमक मिलाकर पिलाना चाहिए और बच्चे को हलके ढंग से वमन कराकर सब कफ विकार निकाल देना चाहिए। थोड़े गरम जल में नमक मिलाकर पिलाने से बच्चों को वमन हो जाती है।

दो दोषों से दूषित दूध में दो दोषों को औषधियाँ और त्रिदोषज में तीनों दोषों की औषधियाँ मिलाकर देनी चाहिए।

दूध शुद्ध करने के लिए पाठा, मुर्रा, चिरायता, दारु हल्दी, सोंठ इन्द्र जौ, नागरमोथा और कुटकी का काढ़ा बनाकर माता को पिलाना चाहिए।

तालुकंटक

तालु में स्थित कुपित कफ तालुकंटक नामक रोग उत्पन्न करता है। इस रोग में शिर में तालु प्रदेश नीचा हो जाता है, तालु में गड्ढा पड़ जाता है। तालु कंटक शब्द का शब्दार्थ होता है तालु का कंटका कार—काँटों की तरह—हो जाना।

तालुपात

कुपित कफ के कारण हो तालुपाल नामक रोग होता है। वस्तुतः यह तालु कंटक का हो बढ़ा हुआ रूप है। इस तालुपात रोग में तालु गिर पड़ता है। तालुपात का यही शब्दाथ भी है। बच्चा दूध नहीं पीता, यदि पीना चाहे तो बड़ी कठिनाई से थोड़ा-बहुत पी पाता है। दस्त पतले होते हैं, प्यास लगती है, आँख, कंठ और मुंह में पीड़ा होती है, वमन हो जाती है और बच्चा अपनी गर्दन नीची किये रहता है है या किसी के सहारे रखना चाहता है क्योंकि गर्दन संभाल नहीं पाता। (बच्चा दुबला चिड़-चिड़ा और सुस्त रहता है) इसे आप विटामिन के अभाव के कारण उत्पन्न रोग भी कह सकते हैं और यह बच्चों का क्षय भी है। फक्क रोग और मराजमस भी देखिए।

इस रोग में कफ के कारण मन्दाग्नि भी हो जाती है। वस्तुतः जब यह रोग हो जाता है तब देहातों में तो बच्चों का जीना ही मुश्किल हो जाता है। इस रोग में कैलशियम की कमी भी हो जाती है। बहुत से चिकित्सक तालुकंटक और तालुपात में भेद नहीं करते और दोनों को तालु कंटक ही कहते हैं। इसमें बच्चा सूख जाता है।

चिकित्सा

छोटी हर्रे, बच और कूट बराबर-बराबर लेकर बारीक चूर्ण कर डाले और उचित मात्रा में लेकर शहद मिलाकर माता के दूध के साथ बच्चे को पिलाना चाहिए इससे तालुकंटक रोग से छुटकारा मिल जाता है। यही औषधि तालुपात में भी काम करती है।

भृङ्गराज पीसकर जरा सा गुड़ मिलाकर तालु के ऊपर लेप करने से भी तालु कंटक रोग आराम हो जाता है।

महापद्म विसर्प

यों तो विसर्प बच्चों और बड़ों सब को होता है। परन्तु बच्चों को वस्ति और शिर में उत्पन्न हुआ विसर्प प्राणघातक होता है। यह त्रिदोष से उत्पन्न होता है और कनपटी के पास शङ्ख देश से उत्पन्न होकर नीचे हृदय तक उतरता है और हृदय देश में उत्पन्न होकर गुदा पर्यन्त जाता है। लाल कमल के रङ्ग का या किंचित कालापन लिए हुए लाल रङ्ग का होता है इसी कारण इसे महापद्म नाम दिया गया है। शङ्ख से हृदय तक आनेवाला शीर्षज महापद्म और हृदय से गुदा या वस्ति को आनेवाला वस्तिज महापद्म कहलाता है। ऐसा भी हो सकता है कि शिर से, उत्पन्न हो कर यह रोग हृदय तक आवे और फिर हृदय देश से वस्ति की ओर आ जाय। विसर्प एक फैलने वाला रोग है इसमें रक्त में विकार आता है। रक्त में विकार होने से ही किसी रंग की सूजन सहित या अल्प सूजन के साथ जिसमें वेदना जलन आदि विशेष रूप से रहते हैं दोष सरक कर बढ़ता है इसीको विसर्प कहते हैं। इसे अंगरेजी में इरासिपिल्स कहते हैं।

चिकित्सा

इस रोग में एनिमा रोज दीजिए और बच्चे को फल खाने को दीजिए अथवा मोसमी फलों का रस दीजिए और दूध दीजिए। यदि अन्न खानेवाला बच्चा हो तो उसका भी अन्न बन्द कर दीजिए और

केवल मौसमी फल दीजिए और नीचे लिखे नुसखों में से कोई लेप कीजिए।

(१) नागर मोथा, लाल कमल, नील कमल, खस, सारिवा, मुलहठी, सफेद चन्दन, सरसों और मजीठ सब को समान भाग लेकर पीसकर विसर्प पर लेप करने से विसर्प रोग आराम होता है।

(२) मुलहठी, जामुन की छाल, बड़, बेत, पीपल, पाकड़, पद्म काठ, खस, सफेद चन्दन और मजीठ इन सब को बराबर-बराबर लेकर पीसकर लेप करने से विस्फोट, पीड़ा, व्रण की जलन और विसर्प सब आराम होते हैं।

(३) परवल के पत्ते हरड़, बहेड़ा नीम की छाल और हल्दी समान भाग लेकर दो तोला लेकर चौगुना जल में डाल कर मिट्टी के पात्र में कंडी की आँच पर पकावे जब चौथाई शेष रहे तब उतार कर छानकर पिलावे। इससे विसर्प क्षत विस्फोट और ज्वर आराम होते हैं।

पारिगर्भिक

जब माता गर्भवती हो जाती है तब भी यदि बच्चे को दूध पिलाती रहती है तो उस विकृत दूध के पीने से बच्चे को खाँसी, अग्नि मान्द्य, वमन, तंद्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम (चक्कर आना) और कोष्ठबद्धता या कब्ज रोग हो जाते हैं इन सारे लक्षण समूहों को पारिगर्भिक रोग कहते हैं। पारिगर्भिक का दूसरा नाम है परिभव रोग। इस रोग को लोक भाषा में अहिण्डी कहते हैं। गर्भकाल में दूध वायु से विकृत हो जाता है। उस वायु-विकृत दूध को पीने से यह पारिगर्भिक रोग हो जाता है।

चिकित्सा

पारिगर्भिक रोग में फलों का रस, उत्तम दूध, शुद्ध दूध आदि की व्यवस्था करनी चाहिए तथा ऐसी औषधि देनी चाहिए जिससे अग्नि

दीप्त हो। इसके लिए हिंग्वष्टक चूर्ण, शङ्ख की भस्म का चूर्ण एक या आधी रत्ती की मात्रा में देना चाहिए। कौड़ी की भस्म आधी रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है। लवण भास्कर चूर्ण या अग्नि कुमार रस की भी व्यवस्था की जा सकती है। माता का दूध बन्द करके देना चाहिए।

कुकूणक

दूध पीनेवाले बच्चों को दूध में दोष के कारण आँख की पलकों के भीतर रोग उत्पन्न होता है उसे कुकूणक कहते हैं। आँख की पलकों में सरसों के आकर के या इससे भी छोटे दाने से निकल आते हैं जिसे देशी भाषा में रोहे कहते हैं। इसके कारण आँखों में खुजली होती है और आँखों से आँसू या पानी बार-बार बहुत गिरता है। यह पानी किंचित चिकना होता है। बच्चा ललाट, आँख और नाक को अपने हाथ से बहुत घिसता या रगड़ता है। सूर्य का प्रकाश उसे सहन नहीं होता और वह अपनी पलकें खोलने में भी असमर्थ होता है क्योंकि आँखें गड़ती हैं और रोशनी से कष्ट होता है।

मीठी चीजें, जैसे चीनी, गुड़, मिठाई, मालपूआ, मोहन भोग, हलुआ, बरफी, रसगुल्ले आदि मछली, मांस, दूध, चावल, आलू, पत्ते वाले शाक, मक्खन, दही, सुरा, आसव, पीठी के पदार्थ, उड़द की दाल, बड़े, कचौड़ी आदि तिल, खटाई, काँजी और अन्य अभिष्यन्दी पदार्थ—नसों को बन्द करनेवाले पदार्थ—बालक की माता अधिक मात्रा में और प्रायः रोज ही खाती है तथा भोजन के बाद दिन को सो जाती है तो उसके दोष कुपित हो कर अपने स्थान से हट जाते हैं। दोषों से मार्गों के—रस-दूध आदि बहानेवाले मार्गों के—रुक जाने से माता का दूध विकृत हो जाता है। उस विकृत दूध के पीने से बालक को कुकूणक रोग हो जाता है। अम्ल, नमकीन और मधुर रसवाले पदार्थ बालक और माता यदि दोनों ही सेवन करें तो भी बालक को कुकूणक नामक नेत्र-रोग हो सकता है। इस रोग में आँख सूज भी

जाती है। ऐसा कश्यप संहिता में लिखा है।

चिकित्सा

इस रोग के इलाज के लिए यह आवश्यक है कि माता के दूध का विकार दूर किया जाय। इसके लिए माता को वमन कराना चाहिए। फिर पाचन करावे या उपवास कराकर विकार जला देना चाहिए तथा एनिमा द्वारा या जुलाब द्वारा शेष दोष निकाल देना चाहिए और दूध को गारकर निकाल देना चाहिए और उचित तथा पथ्य भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। रोग उत्पन्न करनेवाले भोजन और अपथ्य रोक देना चाहिए। माता का दिन में सोना रोक देना चाहिए। माता को स्वच्छ और साफ वस्त्र पहनने का आदेश देना चाहिए और गंदगी एक दम रोक देनी चाहिए।

फिर बालक की आँख खोलकर हलका सेंक करना चाहिए और उचित औषधि की व्यवस्था करनी चाहिए।

(१) त्रिफला (हरड़-बहेड़ा और आँवला) पठानी लोध, पुनर्नवा, अदरक, बड़ी कटेरी तथा छोटी कटेरी इनको पीसकर सुखोष्ण गरम करके आँखों पर लेप करने से कफ का नाश हो जाता है और कुकूणक में लाभ होता है।

(२) सोंठ, पीपरि, मिर्च, भृङ्गराज, मैनसिल और करंज के बीज को खूब अच्छी तरह बारीक पीस कर सुरमे की तरह आँख में लगाने से पलकों की खुजली मिट जाती है।

अजगल्लिका के लक्षण

बालक के शरीर में चिकनी, शरीर के रङ्गवाली, गुथी सी, पीड़ा रहित मूंग के आकार की फुंसियाँ होती हैं। इसी को अजगल्लिका कहते हैं।

चिकित्सा

यह एक प्रकार का व्रण ही है। इसे किसी अच्छे चिकित्सक से दिखाना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा यदि अधिक दिनों तक की

जाय तो सम्भव है लाभ हो जाय। एनिमा दे कर पेट साफ कर देना चाहिए। फिर उचित रूप से फलाहार कराकर रक्त शुद्ध करने की चेष्टा करना उचित है।

इसमें आरम्भ में जोंक लगवाकर रक्त निकलवा देने से अजगल्लिका आराम हो जाती है। यदि यह पिड़िका कठिन हो तो क्षार कर्म करने की आवश्यकता पड़ सकती है। यदि पक जाय तो चिरवा कर घाव भरने के लिए उचित उपाय करने चाहिए।

अहिपूतना

पाखाना और पेशाब से गुदा के लिसे रहने से एवं उसे साफ र से न धोने से तथा उस स्थान के पसीना पानी आदि को न पोछने से गुदा में अहिपूतना नामक इस रोग में रक्त और कफ के कोप से गुदा में खुजली होती है और खुजलाने से तत्काल फफोले या फोड़े हो जाते हैं और उनसे स्राव होने लग , पानी या मवाद बहने लगता है। सब फफोले एक में मिल जाते और बड़ा सा फोड़ा बन जाता है यह फोड़ा बड़ा कठिन और कष्ट साध्य होता अहिपूत कहते । गुदा को सेंकने से भी यह रोग हो जाता है। वस्तुतः रक्त में विकार होने के कारण गुदा की सफाई करते रहने पर भी यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा

शंख, सफेद सुरमा और मुलहठी को पानी में पीस कर लेप करने से अहिपूतना नामक रोग नष्ट होता। बच्चे को पथ्य से रखिए और उचित स्वच्छता को भी व्यवस्था कीजिए।

व्रण पश्चातक

इस रोग में बच्चे की गुदा में लाल रंग का व्रण उत्पन्न होता है उसमें जलन होती है और ज्वर तथा खाँसी भी रहती है। यह पित्त के कारण होता है। व्रण का स्वरूप लाल रंग का और जोंक के पेट के समान होता है। इसमें मल पीला और पतला होता है। कभी-कभी

कब्ज भी रहने लगता है। इसी को व्रण पश्चातक कहते हैं।

इसमें चतुराई से जोंक लगाकर दूषित रक्त निकाल देना चाहिए। बाद को पीपल वृक्ष की छाल, गूलर की छाल, पाकड़ की छाल और बरगद की छाल चारों को समान भाग लेकर काढ़ा बनाकर उसी काढ़े से घाव धोना चाहिए। इससे घाव भर जाता है और सूख जाता है। इसी काढ़े में कपड़ा भिगोकर घाव को तर रखने से जलन आदि शीघ्र दूर हो जाते हैं।

गुदभ्रंश—काँच निकलना

जब छोटे बच्चों को अतीसार आदि हो जाता है और वे कमजोर हो जाते हैं अथवा कब्ज रहने के कारण जब काँख-काँख कर पखाना करते हैं तब कमजोरी के कारण गुदा बाहर निकल आती है। इसी को काँच निकलना कहते हैं। यह रूक्षता बढ़ने से और कमजोर बच्चों को कभी-कभी बिना अतिसार के भी निकल आती है।

चिकित्सा

गुदा को सेंककर तथा गाय का घी लगाकर भीतर प्रवेश कर देना चाहिए और ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि बच्चा पखाना करते वक्त काँखे नहीं। प्राचीन काल में गुदा प्रवेश करके एक प्रकार की चमड़े की पट्टी जिसमें छेद होता था बाँध देते थे इससे गुदा बाहर नहीं निकलती थी। थोड़ा-थोड़ा यों भी गुदा सेंक देना चाहिए और ऐसा भोजन दिया जाय जिससे बच्चे का बल बढ़े और रूक्षता कम हो जाय।

(१) कमलिनी की कोमल पत्ती पीसकर चीनी मिला कर खाने से काँच निकलना बन्द हो जाता है।

(२) चूहे का माँस घी में पकाकर उसी घी को गुदा में लेप करने से काँच निकलने में लाभ होता है।

(३) कसैले रस वाली चीजों के लेप से गुदा बाहर नहीं निकलती। इसके लिए हरड़ और फिटकरी का प्रयोग किया जा सकता है।

आँख उठना

दूध या आहार के दोष से अथवा दाँत निकलने के समय दोषों के कुपित होने से आँख में विकार हो जाता है इस रोग में आँख की भीतरी पलकों और श्वेत भाग में प्रदाह होता है। इसमें आँखें लाल हो जाती हैं, पानी या कीचड़ बहता है, आँखों में दर्द होता है, कभी कभी, आँखों की पलकें सूज जाती हैं और बच्चा आँखें बन्द कर लेता है। यदि ३-४ दिन आँखें बन्द रहती हैं तो अकसर आँखों में फूली पड़ जाती है। यह फूली घाव का दाग है।

चिकित्सा

(१) आँख उठने में बरगद का दूध आँख में आँजने से लाभ होता है।

(२) भरभंडा का दूध आँख में आँजने से लाभ होता है।

(३) कपूर १ माशे और पठानी लोध का चूर्ण एक माशे दोनों को पोटली में बाँध कर थोड़े गुलाब-जल में एक घंटे भिगो रखो फिर उसी को बच्चे की आँख में टपकाने से लाभ होता है।

(४) केसर, फिटकरी और थोड़ी सी अफीम गाढ़ा-गाढ़ा पीस कर गरम करके आँख की पलकों पर और चारों ओर लेप करने से लाभ होता है।

आँख उठने पर उपवास कराना चाहिए और फलाहार कराना चाहिए। चीनी नमक मैदा रोटी आदि बन्द करना चाहिए और थोड़े गरम पानी में बोरिक एसिड डालकर उसी से आँख सेंकना चाहिए। कभी-कभी इसी सेंक से आँख आराम हो जाती है।

पोथकी

यह बच्चों की पलकों में होनेवाली एक प्रकार की पिडिका है, यह दाँत निकलते समय अकसर निकल आती है इसमें आँख से पानी बहता है खुजली होती है, लाल सरसों के आकार की छोटी

पिड़िका निकलती है जिसमें दर्द भी होता है।

इसकी चिकित्सा के सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि सम्भव है इसमें शस्त्र चिकित्सा की आवश्यकता पड़े। सदैव किसी चतुर नेत्र-चिकित्सक से शस्त्र चिकित्सा करानी चाहिए। पथ्य पालने से भी लाभ हो सकता है। फलाहार और एनिमा के प्रयोगे आदि द्वारा शरीर शुद्ध करने से लाभ होता है आँख को किंचित सेंकने की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

मूत्राघात

छोटी इलाइची, सोंठ, पीपरि इन सब को समान भाग लेवे और सेंधा नमक एक औषधि का आध लेवे और कूट पीस कर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को शहद और मिश्री मिलाकर चटाने से बच्चों की पेशाब की जलन और पेशाब न होने के रोग मिट जाते हैं।

बालकों का रात को रोना और डरना

(१) यदि बालक रात को बहुत रोता हो तो उसे पीपरि और त्रिफला का चूर्ण समान भाग लेकर ३-४ रत्ती की मात्रा में १ भाग शहद और द। भाग घी मिलाकर चटाने से बच्चों का रात का रोना और डरना आराम होता है।

(२) बेल के पत्ते, उड़द, इन्द्रजौ, सिरस के पत्ते, छछूंदर की लेंड़ी और हलदी इन सब को एकत्र कर आग पर धुनी देने से बच्चों का रात को रोना और डरना आराम हो जाता है।

तालुपाक

असली यवक्षार लेकर शहद में मिलाकर पकी हुई तालुपर लेप करना चाहिए। इस औषधि से लाभ होता है।

ग्रह जुष्ट

सुश्रुत आयुर्वेद का बहुत प्राचीन ग्रंथ है। इसका कौमार भृत्य अध्याय बच्चों के ग्रहों के विषय में बहुत प्रामाणिक माना जाता है।

कुमार कार्तिकेय की रक्षा के लिए भगवान शङ्कर और पार्वती ने ग्रहों की रचना की थी। भगवान कार्तिकेय के युवा हो जाने पर शिव जी ने इन ग्रहों की जीविका के लिए आज्ञा दी कि वे उन बच्चों को सताया करें जिनको बहुत डराया जाता है, जो गन्दे रहते हैं, जिनके घर में यज्ञ नहीं होते, जहाँ पापाचार होते हैं आदि। ऐसा वर्णन कौमार भृत्य में मिलता है। आधुनिक विज्ञान के युग में इन ग्रहों पर लोग कहाँ तक विश्वास करेंगे यह मैं नहीं जानता। परन्तु ग्रहों के लक्षणवाले रोग बच्चों को होते हैं और उनमें बलि, यज्ञ, दान, अनेक प्रकार के स्नान, धूप आदि से लाभ हो जाता है।

बच्चों के ग्रह नव माने जाते हैं। स्कन्द ग्रह, स्कन्दापस्मार ग्रह, शकुनी ग्रह, रेवती ग्रह, पूतना ग्रह, गंध पूतना ग्रह, शीत पूतना ग्रह, मुख मण्डनिका ग्रह और नैगमेय ग्रह।

स्कन्द ग्रह के लक्षण

आँख का गोला सूज जाता है, रक्त की सी गंध आती है, मुख टेढ़ा हो जाता है, बच्चा स्तन नहीं पीता, एक आँख और उसकी पलकें बहुत फड़कती हैं, आँखें खुलती नहीं हैं बच्चा उद्विग्न रहता है, बच्चा कम रोता है, मल गाढ़ा होता है, और दोनों हाथ की मुट्ठियाँ बन्द रखता है। बच्चे के अङ्ग भी फड़कते हैं। बच्चे की दृष्टि ऊपर जाती है। बच्चा डरा रहता है और दाँत चबाता है।

स्कन्दापस्मार के लक्षण

बच्चा बेहोश हो जाता है और मुंह से फेन निकलता है, होश में आने पर बहुत अधिक रोता है, पीप और रक्त के समान उसमें से गन्ध आती है, हाथ-पाँव नचाता है, जंभाई ज्यादा आती है, रो कर मल-मूत्र त्यागता है यह स्कन्दापस्मार ग्रह से पीड़ित बच्चे के लक्षण हैं।

शकुनी ग्रह के लक्षण

बालक का अङ्ग शिथिल हो जाय, भय से चकित रहे, शरीर से पक्षी की सी गंध आवे जलन पैदा करनेवाले और पकनेवाले फोड़े

फुंसियाँ शरीर में हो जायं, बहनेवाले फोड़ों से बच्चा पीड़ित हो जाय ये लक्षण शकुनी ग्रह से पीड़ित बच्चे के होते हैं।

रेवती ग्रह के लक्षण

बालक का मुंह लाल रङ्ग का हो जाय, शरीर का रङ्ग अत्यन्त सफेद हो जाय, मल हरे रङ्ग का हो, ज्वर हो, मुख पक जाय, वेदना बहुत हो, बच्चा कान-नाक अधिक रगड़े, शरीर व्रण और फफोलों से पीड़ित हो जाय, पतला पाखाना हो, कीचड़ का सा गन्धवाला रक्त-स्राव शरीर से हो। ये लक्षण रेवती ग्रह के हैं।

पूतना ग्रह के लक्षण

ज्वर और अतीसार हो जाते हैं, प्यास लगती है, बच्चा तिरछा देखता है, आँखें कुछ टेढ़ी हो जाती हैं, बच्चा रोता है, नींद नष्ट हो जाती है और बच्चा बेचैन रहता है। काग की सी गन्ध आवे, वमन हो, रोमांच हो और शरीर शिथिल हो। ये लक्षण पूतना ग्रह के हैं ये सब लक्षण स्नायु से सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

गन्ध पूतना के लक्षण

हिचकी, वमन, खाँसी, ज्वर और अतीसार हो जाते हैं। प्यास बहुत लगती है, बच्चे के शरीर से चर्बी की सी गँध आती है। सोते समय नीचा मुंह करके सोता है, वर्ण बिगड़ जाता है, खट्टी-खट्टी गंध आती है। और बच्चा दूध नहीं पीता। ये सब लक्षण गंध पूतना ग्रह के होते हैं। सुश्रुत ने इसे अंध पूतना लिखा है।

शीत पूतना के लक्षण

बच्चा काँपता है, खाँसता है और क्षीण हो जाता है। उसे नेत्र रोग हो जाता है और बच्चे से दुर्गन्ध आती है। तथा वमन और अतीसार हो जाते हैं। सोते समय पेट की आँतें गुड़गुड़ाती हैं, शरीर कच्चे रक्त की सी गन्ध आती है। यह शीत पूतना के लक्षण हैं।

मुखमण्डनिका के लक्षण

बच्चे का मुख और रङ्ग प्रसन्न दीखता है, हाथ-पाँव मलिन लगते हैं

शिराएं फूल जाती हैं और चारों ओर फैली दिखाई देती हैं। बच्चे के शरीर से मूत्र की सी गन्ध आती है, बच्चा भोजन बहुत करता है। यह मुख मण्डनिका ग्रह के लक्षण हैं।

नैगमेय ग्रह के लक्षण

वमन होती है, मुख और कंठ सूखता है, मूर्च्छा आती है, शरीर से दुर्गन्ध आती है, बच्चा ऊपर देखता है, दाँत चबाता है ज्वर बराबर बना रहता है बालक के मुख से झाग आती है। बीच में से बच्चा नय जाता है, चरबी की सी गन्ध आती है। बेहोशी भी हो जाती है, यह नैगमेय ग्रह का लक्षण है।

ग्रहों के असाध्य लक्षण

आँख शिथिल हो जाय, बच्चा दूध न पीवे, बार-बार बेहोश हो जाय, शरीर अकड़ जाय और ग्रहों के सम्पूर्ण लक्षण प्रगट हों तो ऐसे ग्रह-पीड़ित रोगी को असाध्य समझना चाहिए। इनसे विपरीत लक्षण वाले साध्य होते हैं। ग्रह जुष्ट की चिकित्सा शीघ्र करनी चाहिए। स्कन्द ग्रह सबसे दुश्चिकित्स्य है। इस ग्रह से बच्चे शीघ्र ही मर जाते हैं।

वृद्ध वाग्भट्ट में १२ ग्रहों के नाम लिखे हैं—स्कन्द विशाख, मेष, श्वग्रह पितृ संज्ञक ये ५ पुरुष शरीर धारी हैं। शकुनी, पूतना, शीत पूतना दृष्टि पूतना, मुखमण्डनिका रेवती और शुष्क रेवती ये सात स्त्री शरीर धारी हैं। सुश्रुत ने केवल ६ ही ग्रह माने हैं। मेष और पितृ संज्ञक का समावेश नैगमेय में होता है। विशाखा का स्कन्दापस्मार में। श्वग्रह का स्कन्द में अन्तर भाव होता है। दृष्टि पूतना का अन्तर भाव पूतना में और शुष्क रेवती का रेवती में अन्तर भाव होता है। इस प्रकार नव ग्रह अन्य सभी आचार्यों ने माना है।

ग्रह चिकित्सा

इस रोग की विशेष चिकित्सा न लिखकर हम यहाँ सामान्य चिकित्सा ही लिखेंगे। ग्रहों की सामान्य चिकित्सा का अर्थ यह है कि

यह चिकित्सा प्रायः सभी ग्रहों में की जा सकती है।

माष पर्णी, गोरख मुण्डी और नेत्रवाला का काढ़ा बनाकर उसी काढ़े से बच्चे को स्नान करावे। सप्तपर्ण, कूठ, हल्दी और चन्दन का लेप करे। जहाँ बच्चा सोता हो वहाँ नीचे लिखी औषधियों का धूप दें। जैसे—साँप की केंचुल, लहसुन, मुर्रा, सरसों, नीम की पत्तियाँ, बिल्ली की विष्टा, रोयें, मेढ़ा सिंगी और बच इनमें जितनी औषधियाँ मिलें उनको एकत्र करके मधु में मिलाकर अग्नि में धूप दें।

अष्ट मङ्गल घृत का प्रयोग करने से बच्चे पुष्ट, बुद्धिमान और मेधावी होते हैं तथा उन्हें कोई ग्रह कभी नहीं सताता इसके बनाने की विधि नीचे दी जा रही है—

बच, कूट, ब्राह्मी, पीली सरसों, सरिवा, सेंधा नमक, पीपरि इनको समान भाग लेकर खूब बारीक पानी से पीस कर पीसी हुई लुगदी का चौगुना गाय का घी मिलाकर उसमें घी से चौगुना पानी डाल दे और धीमी आँच पर पकावे। जब पानी जल जाय और घी तैयार हो जाय तब छान ले। इस घी में से ४ आने भर या बच्चे की अवस्थानुसार उचित मात्रा में थोड़े गरम दूध में मिलाकर पिला दे। इस घी की मालिश भी की जा सकती है।

सुश्रुत ने लिखा है कि सामान्यतया बच्चे को स्वच्छ रखना चाहिए। शरीर में घी की मालिश करनी चाहिए। औषधियों से धूप देना चाहिए और परिषेक करना चाहिए।

आयुर्वेद शास्त्र में प्रत्येक ग्रह के लिए विषिष्ट परिषेक, लेप, धूप, बलि, मंत्र इत्यादि का विवेचन किया गया है उन सब का वर्णन बिस्तार-भय के कारण यहाँ नहीं किया जा रहा है। दूसरे यह विषय सामान्य माता-पिता के लिए अरुचिकर सा भी होगा।

बच्चों के चन्द रोगों की औषधियाँ

१—पेट में दर्द हो तो फिटकरी, सुहागा, एलुआ और हल्दी इनको गोमूत्र में पीसकर गरम-गरम लेप पेडू पर करना चाहिए।

२—बालकों को दस्त कराने की आवश्यकता हो तो थोड़े से गुलाब के फूल पीस कर उसमें थोड़ी चीनी मिलाकर थोड़े पानी में घोल कर पिला देना चाहिए।

३—यदि बालक तुतलाता हो तो छोटी ब्राह्मी के पत्ते रोज खिलाना चाहिए। इससे जीभ नर्म और पतली हो जाती है और तुतलाने का रोग मिट जाता है।

४—रतौंधी में प्याज का रस आँख में आँजना चाहिए। प्याज का रस और गुड़ खिलाने से बच्चे जल्दी बढ़ते हैं।

५—बालक के पेट में यदि मिट्टी हो तो खूब पके केले में शहद मिलाकर खिलाने से निकल जाती है।

६—अगर बालक को लू लग गई हो या आग की लपक लग गई हो तो १ प्याज कच्ची और एक प्याज आग में भुनी हुई खूब बारीक पीसकर छान ले और उसमें [illegible] और अन्दाज की मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। प्याज को एक गाँठ बच्चे के पास रखने से उसे लू नहीं लगती।

७—बालक के कान में कोई कीड़ा पड़ गया हो तो कान में सरसों का तेल डालना चाहिए।

८—यदि बच्चे के सिर में जूं पड़ गये हो तो निबकौड़ी पीसकर सिर में लगाना चाहिए या नीम का तेल लगाना चाहिए।

९—घी में नमक मिलाकर नाभि पर रोज दो तीन बार लगाने से ओठ फटना बन्द हो जाता है।

१०—नागरमोथा, बड़ी हरड़, नीम के सींके, परवल की पत्ती और मुलहठी प्रत्येक औषधि चार-चार रत्ती लेकर एक छटाँक पानी में काढ़ा बनाकर उसमें माँ का दूध और मिश्री मिलाकर जरा कुन-कुन पिलावे इससे सब प्रकार का ज्वर उतर जाता है।

११—मुरा, हलदी, सरसों पीली, हींग, मजीठ, नागरमोथा, मंगरैल इन सब को बकरी के दूध में पीस कर उबटन लगाने से बच्चों का